वर्ष–6, अंक–1

www.garbhanal.com
MPHIN/2011/55820
मार्च 2016 ● मूल्य रु. 20

पत्रिका

गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की आवाज़

हरियाणा विशेष

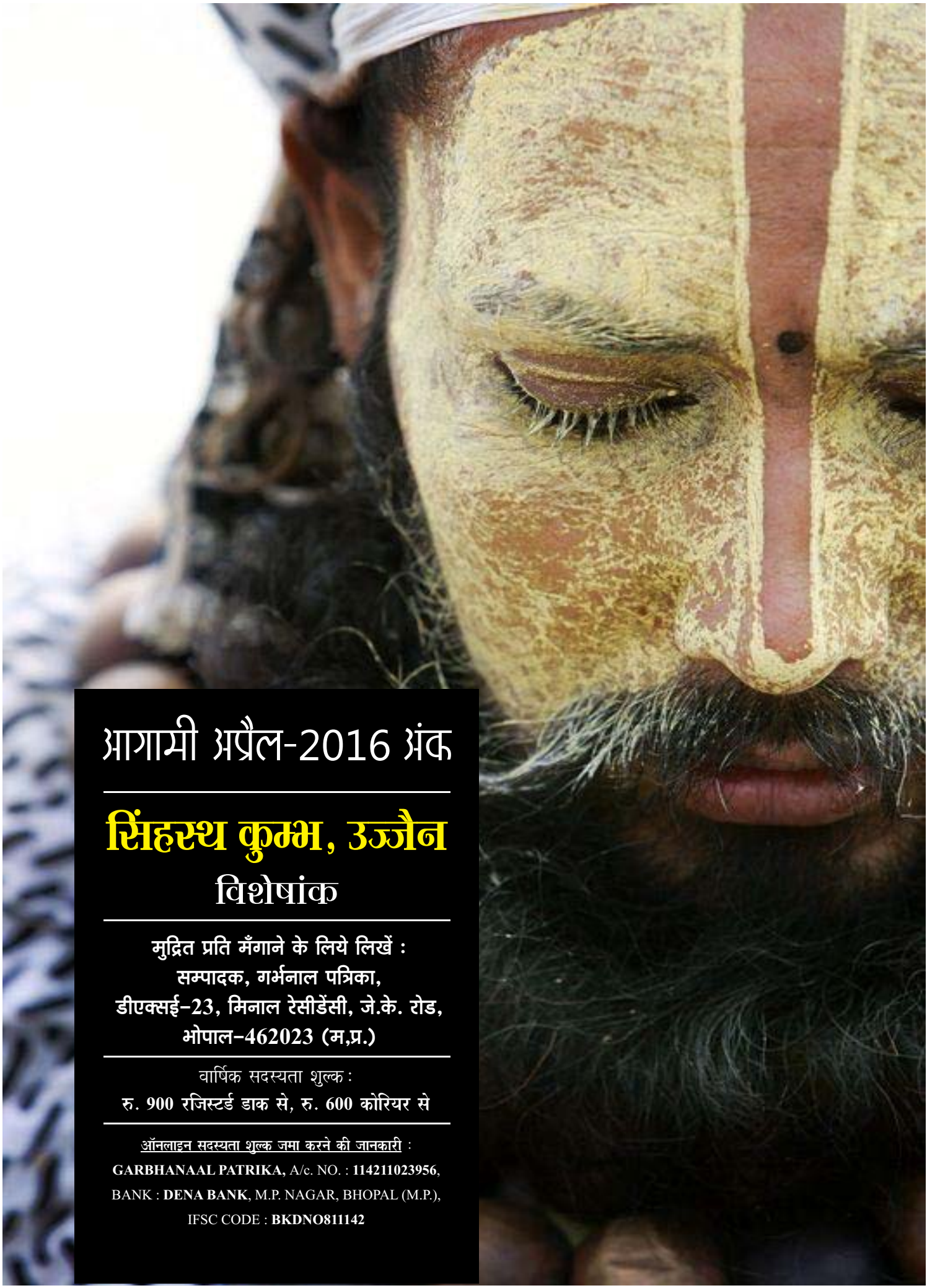

आगामी अप्रैल-2016 अंक

सिंहस्थ कुम्भ, उज्जैन

विशेषांक

मुद्रित प्रति मँगाने के लिये लिखें :
सम्पादक, गर्भनाल पत्रिका,
डीएक्सई-23, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड,
भोपाल-462023 (म,प्र.)

वार्षिक सदस्यता शुल्क :
रु. 900 रजिस्टर्ड डाक से, रु. 600 कोरियर से

ऑनलाइन सदस्यता शुल्क जमा करने की जानकारी :
GARBHANAAL PATRIKA, A/c. NO. : **114211023956,**
BANK : **DENA BANK**, M.P. NAGAR, BHOPAL (M.P.),
IFSC CODE : **BKDNO811142**

गर्भनाल पत्रिका

वर्ष-6, अंक-1 (इंटरनेट संस्करण : 112)

मार्च 2016

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
डॉ. दिनेश श्रीवास्तव, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
बी.एन. गोयल, कनाडा
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

आवरण छायाचित्र
साभार - गूगल

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी सुषमा शर्मा के लिए बॉक्स कारूगेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिंटर्स, 14-बी, आई सेक्टर, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल द्वारा मुद्रित एवं डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल से प्रकाशित.

>>12

हिंदी-रूसी अनुवादक बनने का स्वप्न

>>15

धरती पर जन्नत है मालदीव

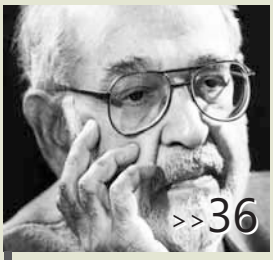
>>36

अवलोकी अज्ञेय

इस अंक में

सम्पादकीय :	गंगानन्द झा	2
आवरण :	डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा	4
	राजू मिश्र	7
मुद्दा :	सौरभ पाण्डेय	8
मन की बात :	अन्या शप्रान	14
तथ्य :	डॉ. बागेश्री चक्रधर	16
यात्रा-संस्मरण :	अजय गर्ग	19
विमर्श :	डॉ. विजय मिश्र	22
परम्परा :	मानसश्री गोपाल राजू	24
ज़न्नत की हकीकत :	रमेश जोशी	26
शिकागो की डायरी :	अपर्णा राय	28
हमारा समय :	ध्रुव शुक्ल	32
नजरिया :	उदयन वाजपेयी	34
समसामयिक :	लाल्टू	36
रम्य-रचना :	सूर्यबाला	38
	सुधा दीक्षित	40
अनुवाद :	बी.मरिया कुमार	42
	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	44
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	48
कविता :	नीलम दीक्षित	57
	डॉ. एल.के. वर्मा	58
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	59
आपकी बात :		60

स्मृति चारण

जीवन के कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जिनकी हम व्याख्या नहीं कर पाते। मैं मात्र बीस महीनों के लिए ईशान भारत के असम राज्य के सिलचर में रहा था। यह बात करीब छप्पन साल पहले की है। वहाँ के लोगों से अप्रत्याशित रूप में बहुत ही स्नेह, सम्मान और स्वीकृति मिली। लेकिन वहाँ से आने के बाद फिर वहाँ एक बार भी जाना नहीं हो पाया। बस पत्र द्वारा स्नेहशील मित्र अनन्त देवजी से करीब बीस पच्चीस सालों तक सम्पर्क बना रहा था। पर सपनों में वहाँ जाना लगातार पचास सालों तक होता ही रहा। मैं समझ नहीं पाता। इन सपनों में सिलचर पहुँचता था, एक खास बात थी कि सपनों में भी कभी अपने मित्रों से भेंट नहीं हो पाई। दूसरी जगहों पर ही भटकता रह जाता। अपराध बोध जैसा लगा करता। मन में होता, सपनों से उबरने के लिए एक बार सिलचर जाएँ। पर भावुकता को प्रश्रय देना व्यावहारिक बुद्धि को सही नहीं लगा, फलस्वरूप मैं सपनों की उलझन से मुक्त नहीं हुआ। कदाचित फिर करीब पचास साल बाद मेरे बेटे को, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक है, सिलचर स्थित आसाम विश्वविद्यालय से एक सेमिनार में भागीदारी का निमन्त्रण मिला। मैंने उससे कहा कि हो सकता है कि मेरे मित्रों में से कोई शायद अभी भी जीवित हो। तुम पता करना। उसे मैंने तीन ठिकाने दिए। एक अपने घनिष्ठ मित्र अनन्त देव का, दूसरा कॉलेज के एक सहकर्मी डॉ. अपराजिता भट्टाचार्य का, और तीसरा डॉ. कल्याणी दास के नर्सिंग होम का। मुझे पता था कि डॉ. दास का देहान्त हो चुका है, इसलिए उनके नर्सिंग होम की बात कही थी उसको।

आसाम विश्वविद्यालय में पूछताछ करने पर उसे श्री अनन्त देव का ठिकाना मिला। वे उनसे मिलने गए तो बड़ी ही सरगर्मी से वे मेरे बेटे-बहू से मिले, मेरे साथ के अनुभवों की चर्चा कर भावुक हो गए। फिर फोन पर मुझसे देर तक बातें करते रहे। फिर उन्होंने उन्हें दूसरे दिन भोजन पर आमन्त्रित किया।

इसके बाद वे लोग कॉलेज की मेरी सहकर्मी डॉ. अपराजिता से मिले। वे भी मेरी ही तरह सेवानिवृत्त हो चुकी थीं, उन्होंने कॉलेज के एक वर्तमान प्राध्यापक को बुला रखा था। बातचीत के दौरान उन्होंने कॉलेज की पत्रिका के पुराने अंकों की कई एक प्रतियाँ उन्हें दीं। उनमें से कॉलेज की एक हीरक जयन्ती के अवसर की थी। डॉ. अपराजिता ने उन्हें दिखलाया कि कॉलेज के पुराने अध्यापकों की सूची में मेरा नाम भी था। फिर वे लोग डॉ. कल्याणी दास द्वारा स्थापित सुन्दरी मोहन सेवा सदन गए। संस्थान के निर्देशक डॉ. कुमार दास बड़ी आत्मीयता के साथ उनसे मिले, सेवा सदन के विभिन्न विभागों में ले गए तथा उन्होंने भी संस्थान की स्मारिका तथा अन्य पुस्तिका भेंट की।

यह सब मेरे लिए सार्थकता का एहसास कराने वाली संवेदनाएँ थीं। मैंने अपने सिलचर प्रवास के संस्मरण हिन्दी में लिखे थे। श्री अनन्त देव हिन्दी नहीं पढ़ सकते थे, इसलिए मैंने उस संस्मरण का अपनी टूटी फूटी बांग्ला अनुवाद डाक से उनके पास भेजा। उसके कुछ दिनों बाद

> मनुष्य स्वभाव से रहस्यप्रिय होता है। वह चाँदनी को अधिक पसन्द करता है, क्योंकि पूर्णिमा की चाँदनी में, जब लगता है कि सारी चीजें साफ दिख रही हैं, उनके ऊपर एक आवरण चढ़ा होता है। सूरज की रोशनी में सच के ऊपर पर्दा नहीं रह जाता, उसकी आँखें चौंधिया जाती हैं।

एक पैकेट मुझे मिला, खोला तो एक आश्चर्य मेरे लिए प्रतीक्षारत मिला। पैकेट में एक पत्र के साथ सिलचर के एक दैनिक समाचार-पत्र (सामयिक प्रसंग) की प्रति थी। खोला तो देखा रविवासरीय अंक में एक पूरा पन्ने पर मेरा संस्मरण छपा हुआ था। अनन्त बाबू सिलचर के सांस्कृतिक जगत में अभी भी सक्रिय थे। उनके भतीजे श्री अमिताभ देव चौधुरी प्रतिष्ठित कवि एवम् सम्पादक थे। उनसे सामयिक प्रसंग के इण्टरनेट संस्करण का पता भी मालूम हुआ। मैं इण्टरनेट पर सिलचर के समाचार नियमित रूप में पढ़ सकता था। मैंने कृतज्ञता एवम् धन्यवाद ज्ञापन के प्रतीक के रूप में दो पुस्तकें कुरियर से उन्हें भेजी। अब मैं किताबें मिलने की जानकारी पाने के लिए अनन्त बाबू के फोन या पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था। पर कुछ ही दिनों बाद इण्टरनेट पर सामयिक प्रसंग के पहले ही पन्ने पर उनके आकस्मिक निधन का समाचार पढ़कर स्तब्ध रह गया। लगा जैसे अनन्त बाबू मेरे साथ सम्पर्क कायम होने का इन्तजार कर रहे थे। मैं हतप्रभ रह गया। फोन से उनके नाती से बात हुई, सामयिक प्रसंग के सम्पादक से बात हुई और अमिताभ जी से बात हुई। उन्होंने बतलाया कि मेरे द्वारा भेजी गई पुस्तकें अनन्त बाबू के अस्वस्थ होने के पहले मिल गई थीं। अमिताभ और मेरे बीच सम्बन्ध सूत्र कायम हो गया। उनकी कई रचनाएँ मैंने हिन्दी में अनुवाद कर प्रकाशित कीं। सुन्दरी मोहन सेवा सदन के निर्देशक से भी इमेल के द्वारा बातें हुईं। मैंने सेवा-सदन के लिए इण्टरनेट द्वारा चन्दा भेजकर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की। मुझे स्वयम् बहुत ही अच्छा लगा। डॉ. कल्याणी दास के यज्ञ में भागीदारी का एहसास हुआ।

इस स्मृति-चारण की प्रासंगिकता इस बात में है कि इसके बाद सिलचर के सपने आने बन्द हो गए। सपनों का इतनी लम्बी अवधि तक आते रहने और फिर एक बारगी बन्द होने का अनुभव एक पहेली सा लगता है। हमने बचपन से सुना है कि मृत्यु के उपरान्त मृतक की आत्मा अपने प्रिय जन के आसपास मँड़राया करती है। मृतक का पिण्डदान हो जाए तो आत्मा को मँड़राने से मुक्ति मिल जाती है। विज्ञ-जन कहते हैं, मनुष्य के मन का रहस्य अभेद्य है। इस तजुर्बे से मानने का आधार मिलता है कि पिण्डदान जैसा कर्मकाण्ड मृतक की आत्मा के बजाय उसके प्रियजन को मनोवैज्ञानिक स्तर पर मुक्त करता है। रहस्य की बात करने पर रामवृक्ष बेनीपुरी की रचना आम्रपाली में लिखी बात याद आती है, मनुष्य स्वभाव से रहस्यप्रिय होता है। वह चाँदनी को अधिक पसन्द करता है, क्योंकि पूर्णिमा की चाँदनी में, जब लगता है कि सारी चीजें साफ दिख रही हैं, उनके ऊपर एक आवरण चढ़ा होता है। सूरज की रोशनी में सच के ऊपर पर्दा नहीं रह जाता, उसकी आँखें चौंधिया जाती हैं।

लगातार सपनों द्वारा उँगली उठाए जाने के बावजूद मेरा सिलचर नहीं जाना कदाचित अपने अन्तर की आशंका के कारण था कि हो सकता है कि उन लोगों का मेरे प्रति उत्साह धूमिल हो गया हो। वह सच मेरे लिए भयावह होता।

अन्त में : रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इस बांग्ला कविता से वक्तव्य को विराम –

इस सुन्दर भुवन में मैं मरना नहीं चाहता,
मनुष्य के बीच मैं जीना चाहता हूँ।
सूरज के हाथों पुष्पित इस कानन में,
किसी जीवन्त हृदय में कदाचित स्थान पा जाऊँ
धरती पर प्राणों का खेल हमेशा
तरंगायित रहा करता है।
विरह-मिलन, आँसुओं और हँसी से भरा हुआ,
मनुष्य के सुख-दुख से संगीत गूँथकर
शायद मैं अमर-आवास की रचना कर पाऊँ।
अगर ऐसा नहीं कर पाऊँ,
तो जब तक जीवित रहूँ
तुम लोगों के बीच ही रहते हुए सुबह शाम,
नए-नए संगीत के फूल खिलाऊँ।
खुशी-खुशी फूल लेना,
उसके बाद,
अगर फूल सूख जाए, तो उसे फेंक देना। ■

ganganand.jha@gmail.com

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

१ नवम्बर १९६२ के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय। 'दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक प्रकाशित। शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित। सम्प्रति- आचार्य, हिन्दी विभाग, गुआंगदांग अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ग्वान्जाऊ,चीन।

सम्पर्क : 2845009097@qq.com

आवरण

गुरु गाँव से गुड़गाँवा तक

जब भी बहिन के यहाँ गया हूँ, पालम विहार मोड़ पर खड़े हो-हो कर उँगलियों के बीच करीने से नोटें दबाए आरटीवी के कंडक्टर 'गुड़गाँवा-गुड़गाँवा' चिल्लाते हुए मुझे बहुत आकर्षित करते रहे हैं। ये ठेठ भाषा में बात करते हैं। कोई कितना भी तुर्रम खाँ क्यों न हो इनकी 'रे-तू' से सम्मानित हुए बिना नहीं बचता।

यह औद्योगिक शहर है। उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के मज़दूरों की साइकिलों से अटी सड़कों पर इन कंडक्टरों की आवाज़ें भी अपना खास वजूद रखती हैं। यहाँ साइकिलों और तिल-तिल भरी छोटी-छोटी बसों की सवारी करने वाली जनता को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होता कि गुड़गाँव आज गरीब-मज़दूर की शरणस्थली है। भले ही यहाँ उन्हें लंबी-लंबी तनख़्वाहें नहीं मिलतीं लेकिन भूखे भी नहीं सोना पड़ता। मकान का किराया, खाना और दावा-दारू के वास्ते भी कुछ न कुछ बचा के ये लोग घर भी भेज ही देते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ है कि यह गाँव न केवल अपना पेट भरता है बल्कि देश के अन्य प्रांतों के हज़ारों गाँवों का भी पेट भरता है।

इस गाँव का अपना इतिहास है। पुराणों से भी इसका गहरा नाता है। महाभारत काल में राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ बसाने के बाद राजधानी के निकटवर्ती इस गाँव को अपने धर्मगुरु द्रोणाचार्य को उपहार स्वरूप दिया था। महान गुरुभक्त एकलव्य का भी इस गुड़गांव से गहरा संबंध है। यहीं के जंगलों में उसने धनुर्विद्या का गहन अभ्यास किया था और यहीं उसने अपनी प्रतिभा के बदले गुरु दक्षिणा में अँगूठा दान देकर इतिहास में अपना नाम दर्ज कराया था। एक शिष्य ने गाँव दान किया था और दूसरे ने अंगूठा वह भी दाएँ हाथ का। किसका दान बड़ा है? यह इसी बात से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि एकलव्य के दान को दुनिया के हर कोने का बच्चा-बच्चा जानता है और युधिष्ठिर के दान को केवल गुड़गाँव। गुरुदक्षिणा में दिए जाने के कारण इसे गुरुग्राम कहा जाने लगा। अपभ्रंशों के विकास के साथ-साथ जैसे हर ग्राम गाँव हो गया गुरुग्राम भी गुरगांव हो गया और बिगड़ते-बिगड़ते गुरगांव से गुड़गाँव। गुड़गाँव भी कहाँ? गुड़गाँव तो पढे-लिखों के लिए है। आमजन के द्वारा तो इसे हरियाणवी में गुड़गाँवा-गुड़गाँवा ही पुकारे जाते हुए सुना जाता है। पौराणिक दृष्टि से तो अब इसका कोई खास महत्त्व नहीं है। गुरु द्रोणाचार्य के नाम पर एक तालाब के भग्नावशेष और साथ में लगा हुआ एक मंदिर भर है, जो कहने के लिए इसे सुदूर अतीत से भी जोड़ सकता है। इसके अलावा यहाँ शीतला माता का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। देश-विदेश से पर्यटक शीतला माता की पूजा करने के लिए यहां आते हैं। शीतला माता के मन्दिर के अलावा भी पर्यटक यहां पर कई पर्यटक स्थलों की सैर कर सकते हैं। लेकिन इसे औद्योगिक तीर्थ कहना अधिक तर्क संगत है क्योंकि देशभर के हजारों गाँवों की रोटी का जुगाड़ यहीं से होता है।

भौगोलिक रूप में गुड़गाँव शहर भले ही हरियाणा में है लेकिन यह लगभग समूचे उत्तर भारत का अपना गाँव है। वर्तमान भौगोलिक स्वरूप वाले इस गुड़गाँव की स्थापना १५ अगस्त १९७९ ई. को की गई थी। हरियाणा राज्य के दक्षिण-पूर्व में बसा यह शहर हरियाणा वालों की अपेक्षा नई दिल्ली

वालों से अधिक दिली रिश्ता रखता है। अघाने पेट घुमंतुओं के लिए भले ही यह पर्यटन का आकर्षण न हो किन्तु रोजी-रोटी की खोज में आने वालों के लिए गुड़गाँव बहुत ही ख़ूबसूरत शहर है। दिल्ली से सटे इस शहर के उत्तर में दिल्ली के अलावा रोहतक भी है। पूर्व में फ़रीदाबाद और दक्षिण में उत्तर प्रदेश की सीमाएं लगती हैं। इसी के जैसे विकास की ओर अग्रसर उत्तर प्रदेश के नोएडा शहर से इसके तार सीधे जुड़े हुए हैं। नए विकसित हो रहे क्षेत्रों में फैक्ट्रियाँ ही फैक्ट्रियाँ हैं। दुनिया भर के देशों की तरह यहां भी सब ओर नवीनतम वास्तु शैली से तैयार की गईं शीशे की इमारतें ही इमारतें हैं। यहां ३०० फ़ॉर्चुन ५०० कंपनी हैं। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी हर रूप और आकार की देशी-विदेशी कंपनियाँ हैं। इसका क्षेत्र कोई बहुत बड़ा नहीं है। शहरी और ग्रामीण कुल आबादी साढ़े सोलह लाख के आस-पास है, जिनमें ग्रामीण आबादी तो पूरी बीस हज़ार भी नहीं है। इसके बावजूद यहाँ का ग्रामीण इलाका कृषि और दुग्ध उत्पादन में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति बनाए हुए है। बाहरी इलाकों में उपजने वाले अन्न, दूध और खनिज इसे गाँव कहे जाने का हक़ दिलाए हुए हैं। रबी और खरीफ की प्रमुख फ़सलों में गेहूँ, तिलहन, बाजरा, ज्वार और दलहन आदि महत्त्वपूर्ण फ़सलें हैं, जो इसे खाद्यान्न में आत्म निर्भर बनाती है। उद्योग और व्यापार की दृष्टि से यह औद्योगिक विकास का गलियारा बन चुका है। सूती वस्त्र, यंत्रचालित बुनाई और कृषि उपकरणों से संबंधित उद्योग हैं। यहाँ दवाओं से लेकर दैनिक उपयोग की हर चीज़ कहीं न कहीं आंटी हुई मिल जाएगी। इसीलिए दुनिया भर के प्रवासियों का ध्यान इसने अपनी ओर खींचा है। यह शहर दिल्ली-जयपुर राजमार्ग पर स्थित है। 'मेक इन इंडिया' कैम्पेन के अंतर्गत दुनियाभर से यहाँ निवेश बढ़ा है। इधर के कुछ दिनों में इसका जबरदस्त औद्योगीकरण हुआ है। बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों के कारख़ाने स्थापित किए गए हैं और निरंतर किए भी जा रहे हैं। देश के कोने-कोने से आए लाखों मज़दूर यहाँ काम कर रहे हैं। अपनी आजीविका कमा रहे हैं और सुदूर गाँवों में रह रहे अपने परिवारों को पाल रहे हैं। इसके अलावा गुड़गाँव को उत्तर भारत के आई.टी. सेक्टर का गढ़ भी कहा जाता है। गुड़गाँव ने कुछ ही समय में जबरदस्त प्रगति की है और हरियाणा सरकार इसे नई ऊँचाईयों तक ले जाने के लिए यहाँ नई परियोजनाएँ शुरू करने की कोशिश कर रही है। हैदराबाद के बाद इस शहर ने भी साइबर दुनिया में अपने अंगदी पाँव रोंप दिए हैं। अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण इसको साइबर सिटी के रूप में नई पहचान भी मिल रही है। इस साइबरी क्षेत्र में भी सारी दुनिया को इसने अपनी ओर आकृष्ट किया है। अकेले चीन देश से बीसों कंपनियाँ गुड़गाँव में निवेश कर रही हैं। मेरे कई चीनी छात्र-छात्राएँ गुड़गाँव में स्थित चीनी कंपनियों में सेवा देकर लौटे हैं। वे बता रहे थे कि गुड़गाँव बहुत ही जल्द इंडस्ट्रियल हब बनने वाला है।

> *नए विकसित हो रहे क्षेत्रों में फैक्ट्रियाँ ही फैक्ट्रियाँ हैं। दुनिया भर के देशों की तरह यहां भी सब ओर नवीनतम वास्तु शैली से तैयार की गईं शीशे की इमारतें ही इमारतें हैं। यहां 300 फ़ॉर्चुन 500 कंपनी हैं। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी हर रूप और आकार की देशी-विदेशी कंपनियाँ हैं।*

देश के प्रस्तावित १०० स्मार्ट शहरों में यह भी शुमार है। इसका भी काया कल्प होगा। लेकिन स्मार्ट सिटी बनाने के पहले उन शहरों का भी निरीक्षण होना ज़रूरी है जो अपनी खूबियों के कारण स्मार्ट बने हुए हैं, खामियों के कारण नहीं। दुनिया भर के स्मार्ट सिटी की लिस्ट में पहले पायदान पर है मशहूर यूरोपियन फुटबॉल क्लब वाला शहर बार्सिलोना। गुड़गाँव की आबादी भी उसी के लगभग है। लेकिन किसी शहर को स्मार्ट सिटी बनने के लिए केवल लंबी-चौड़ी सड़कें, साफ-सुथरी गलियां या बहुमंज़िली इमारतें ही काफी नहीं हैं। इनके साथ-साथ उन्हें कुछ और भी चीज़ें मिलनी चाहिए जिनके अभाव में स्मार्ट सिटी औद्योगीकरण बढ़ने से उलटी दिशा की ओर चलने लग सकते हैं। स्मार्ट बनने के लिए उसे कई कसौटियों पर खरा उतरना पड़ता है। गुड़गाँव के भीतर जो गाँव है अगर वह बचा रहा तो इन कसौटियों पर इसे खरा उतरने में कोई परेशानी नहीं होगी अन्यथा इसकी सुंदरता को

ग्रहण लग सकता है। इसकी स्मार्टनेस की चमक-दमक फीकी पड़ सकती है। हमें अपने स्मार्ट सिटी बनाने के पहले इन विंदुओं पर भी गंभीरता से विचार करना होगा कि आखिर इन शहरों में ऐसा क्या खास है जो इन्हें दुनिया भर के अन्य हजारों शहरों से अलग करता है। वे कौन-से मानदंड हैं जिनके आधार पर इन शहरों को दुनिया की बेस्ट सिटी का दर्जा दिया गया है। सिर्फ और सिर्फ अपने आर्थिक विकास और आसमान छूती इमारतों की वजह से तो इनमें से कोई शहर स्मार्ट नहीं बना होगा।

आखिर किसे कहेंगे स्मार्ट सिटी :

- एक शहर जहां की जलवायु शुद्ध हो, लोग खुली हवा में सांस ले सकें और जिससे सहरी जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके।

- बिजली-पानी की सप्लाई २४ घंटे सुचारु हो यानी शहर में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर उच्च हो। सुविधा संपन्न हो।

- दिनभर लोगों को ट्रैफिक में न जूझना पड़े, सार्वजनिक यातायात उपलब्ध हो जो विश्व स्तरीय हो। सड़कें जाम से मुक्त हों।

- बुनियादी सुविधाएं जैसे किसी चीज की बुकिंग, बिल जमा करना, आदि बेहद सरल हो।

- सड़कें, इमारतें, शापिंग माल, सिनेप्लैक्स सब कुछ योजनाबद्ध तरीके से बने हों। इमारतें नियम के तहत बनी हैं या नहीं, उनमें जरूरी सुविधाएं सुलभ हैं या नहीं। यह भी किसी शहर को स्मार्ट बनने में बड़ी भूमिका निभाता है।

- शहर के भीतरी इलाकों या नदी-नालों के किनारों पर झुग्गी-बस्तियां न हों। एक ऐसा शहर जहां लोगों के रहन-सहन में काफ़ी समानता हो। लेकिन झुग्गी में रहने वाले लोगों को वैकल्पिक सुविधा मुहैया कराई जाए। उन्हें अनाथ करके न छोड़ दिया जाए। सन् २०२२ तक सभी को आवास उपलबध कराना।

- सड़कों पर कूड़ा न हो। सड़कें एकदम साफ हों जिससे जनजीवन को स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराया जा सके।

- गुड गवर्नेंस हो, विशेषकर ई-गवर्नेंस और उसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी हो ।

- महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों की सुरक्षा हो।

- स्वास्थ्य और शिक्षा उच्च दर्जे की हो साथ ही रोजगार के अवसर भी हों ।

- परिवहन व्यवस्था को बेहतरीन हो। शहरी संसाधनों, स्रोतों और बुनियादी संरचनाओं का सक्षम ढंग से विकास किया गया हो। यह दिखना भी चाहिए कि शहर में सड़कों का स्तर और उनका रखरखाव कितना अच्छा है।

ऊपर पहले पायदान पर बैठे जिस 'बार्सिलोना' का जिक्र किया गया है। वह एक दिन में नहीं बना है। उसमें समय लगा है। बाद में वहाँ के नागरकों ने सिविक सेंस के साथ उसे मेंटेन भी रखा है। स्मार्ट सिटी की सूची में दूसरा 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' का शहर है न्यूयॉर्क। इस श्रेणी में तीसरा शहर है ब्रिटेन की राजधानी लंदन। यूरोपियन शैली की शानदार इमारतों के कारण यह शहर दुनिया भर के पर्यटकों का ध्यान अपनी ओर खींचता है। चौथे क्रम पर है पहाड़ों के साये में बसा फ्रांस का शहर नीस। इस शहर की खूबसूरती के चलते ही इसे 'नीस' कहा जाता है।

पांचवी स्मार्ट सिटी है सिंगापुर। पांच स्मार्ट सिटी की लिस्ट में एशिया का इकलौता शहर है। दुनिया के सबसे बड़े कारोबारी शहरों में भी सिंगापुर की गिनती होती है। इसके बावजूद वह दुनिया के पाँच स्मार्ट शहरों में से एक है। माना जाता है कि उद्योग गंदगी के आगार होते हैं लेकिन सिंगापुर को देखकर यह धारणा निर्मूल हो जाती है। कानपुर और आगरा को देखकर बनाई गई हमारी अवधारणाओं को तब तक बल मिलता रहेगा जब तक कि हम कुछ ऐसा न कर दें कि उद्योगों के बावजूद हमारे शहर साफ़-सुथरे हों, तब तक हम लोगों को ऐसा सोचने से मना नहीं कर सकेंगे। स्मार्ट सिटी के हमारे सपने धुंधलाते ही रहेंगे।

क्यों न हम ७ से ९ मार्च को गुड़गाँव में संपन्न होने वाले 'हरियाणा प्रवासी दिवस' पर 'सिंगापुर' जैसा ही गुड़गाँव को भी एशिया का दूसरा स्मार्ट सिटी बनाने का संकल्प लें। यहीं से कुछ ऐसी ठोस शुरुआत भी करें कि इसे एशिया का दूसरा स्मार्ट सिटी कहे जा सकने की उम्मीद जगे। प्रवासी भारतीयों की यह व्यावसायिक समिट इसके भीतर और बाहर दोनों को सँवारने की ओर इस तरह ध्यान देगी कि यह देश का ही नहीं दुनिया का एक सुंदर और समृद्ध शहर बनकर उभर सकेगा। इसी उम्मीद के साथ गुड़गाँव भी दुनिया भर के प्रवासियों का हार्दिक स्वागत कर रहा है कि वे केवल उसकी देह की ही नहीं उसके मन की भी सुनेंगे और उसको मन से भी मनभावन बनाकर इसके 'गुरगांव से गुड़गांवाँ तक' की यात्रा को सार्थक बनाएँगे।■

राजू मिश्र
तीन दशक से अधिक समय से पत्रकारिता जगत में सक्रिय। लेखन, पठन-पाठन में अभिरुचि।
सम्पर्क : rajumishra63@gmail.com

गुड़गांव : खूबियों से घनीभूत शहर

एक खूबी हो तो गिना दें। गुड़गांव अनेकानेक खूबियों से घनीभूत शहर है। कदम-कदम पर यहां विदेशी सरजमी सा अहसास होता है। नेशनल हाई-वे संख्या आठ से जो लोग कुछ साल पहले गुजरे होंगे, उन्हें सिंगापुर की तर्ज पर बहुमंजिली इमारतें अचंभित करती होंगी। कुछ वर्षों में गुड़गांव ने विकास के क्षेत्र में लंबी छलांग लगाई है। जिससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गुड़गांव मिलेनियम सिटी के रूप में स्थापित हुआ है। गुड़गांव परिधान उद्योग के निर्यातक इकाइयों का केंद्र तो था ही, मारुति कार कंपनी, होंडा, कॉस्को बॉल आदि के निर्माण का औद्योगिक केंद्र था मगर तेजी से होते विकास ने इस शहर को पूरी दुनिया के बिजनेस प्रॉसेस आउटसोर्सिंग का केंद्र बना दिया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले कई आर्थिक, व्यवसायिक क्रियाकलाप गुड़गांव में होते हैं। बहुमंजिली इमारतों और व्यवस्थित कॉलोनियों, टाउनशिप के बसाव ने गुड़गांव को देश में पहचान दिलाई। मेट्रो लाइन से जुड़ने के साथ ही गुड़गांव में पहली बार निजी क्षेत्र का मेट्रो के साथ मिलना रैपिड मेट्रो के रूप में सामने आया। साइबर हब यानी कॉरपोरेट कंपनियों का केंद्र समेत डीएलएफ के हिस्से रैपिड मेट्रो से जुड़े।

नेशनल हाई वे संख्या आठ से सटे साइबर हब में केवल कॉरपोरेट कंपनियों के कार्यालय ही नहीं बल्कि मनोरंजन और लाइफ स्टाइल का एक हब बन गया है, मनोरंजक कार्यक्रमों के आयोजन, बेहतर रेस्त्रां के साथ रैपिड मेट्रो स्टेशन भी है, जो यहां आने वाले युवाओं को सपनों के शहर सरीखा अहसास दिलाने में कामयाब रहा। कुछ साल पहले बने किंगडम ऑफ ड्रीम्स ने देश-विदेश में गुड़गांव को अलग ही पहचान दिलाई। किंगडम की कल्वर गली में लोग राज्यों की विशेष पहचान के बीच, वहां के लोकप्रिय व्यंजनों का मजा लेना नहीं भूलते। एक आनंदित दुनिया की अनुभूति होती है इस किंगडम की दुनिया में। देश में ऐसा अनूठा मनोरंजन स्थल दूसरा और नहीं। नौटंकी महल में लाइव थियेटर अत्याधुनिक तकनीक और बॉलीवुड म्यूजिक के साथ श्यामक डावर की कोरियोग्राफी से सजा म्यूजिकल ड्रामा जंगूरा, किशोर कुमार के गीतों के प्रस्तुति के साथ संगीतमय थियेटर

झुमरु ने भी किंगडम की लोकप्रियता में चार चांद लगाने का काम किया। फिल्मी सितारों का यहां बार-बार आना, फिल्मों की शूटिंग, आइफा अवार्ड का आयोजन के अलावा किंगडम में होने वाले विभिन्न आयोजन भी दिल्ली एनसीआर ही नहीं विदेशी पर्यटकों को लुभा रहे हैं। मेट्रो से जुड़ने के बाद से गुड़गांव के एमजी रोड के मॉल्स के व्यवसाय को एक गति मिली। इस सड़क पर करीब एक किमी के भीतर एक दर्जन से ज्यादा बड़े मॉल ने दिल्ली एनसीआर के लोगों को खरीदारी और मनोरंजन का एक बड़ा हब दिया। पीवीआर, डीटी, आयनोक्स, एसआरएस जैसे मल्टीप्लेक्स एमजी रोड और सोहना रोड में युवाओं को बहुत सारे विकल्प दिए। दिल्ली बार्डर पर एक किमी के मॉल एंबियंस मॉल ने भी ब्रांडेड शॉपिंग और मनोरंजन के लिए लोगों एक अच्छी जगह दी।

मेदांता, फोर्टिस, आर्टिमिस जैसे बड़े अस्पतालों के कारण गुड़गांव में मेडिकल टूरिज्म भी खूब बढ़ा है। चिकित्सा जगत में गुड़गांव की बड़ी पहचान बनी है। अरब देशों के अलावा अफ्रीकी देशों से काफी संख्या में लोग इलाज के लिए गुड़गांव आते हैं। चिकित्सा को लेकर इन बड़े अस्पतालों ने भरोसा जगाया है। एक दशक की एक और बड़ी उपलब्धि गुड़गांव में नेत्रदान को लेकर रही है।

निरामया चैरिटेबुल संस्थान और वाईपी महेन्द्ररू आई बैंक में १३०० कार्निया नेत्रदान से प्राप्त किया गया। जिन्हें अस्पताल में और एम्स या दिल्ली के दूसरे अस्पतालों में जहां नेत्रहीनों को जरूरत थी, उपलब्ध कराया गया।

वहीं पटौदी गांव का रुख करें तो यहां स्थित पटौदी महल जिसे इब्राहिम पैलेस के नाम से मशहूरियत हासिल है, लोगों के लिए पर्यटन का केंद्र रहा है। यहां के नवाब एवं प्रसिद्ध क्रिकेटर मंसूर अली खान पटौदी और उनके बेटे फिल्म अभिनेता सैफ अली खान के इस महल को पहले होटल बनाया गया था। कुछ दिनों इब्राहिम पैलेस का रिनोवेशन कराया गया है। बताते हैं कि अब यहां फिल्मों की शूटिंग भी शुरू होगी। पटौदी स्थित हरि मंदिर आश्रम में हॉलीवुड की अभिनेत्री जूलिया राबर्ट्स फिल्म लव, ईट और प्रे की शूटिंग काफी दिन तक चली थी। बावजूद इसके फिल्मों की शूटिंग के लिए निर्माताओं की पसंद की जगह गुड़गांव बना। चाहे आमिर खान की हिट फिल्म पीके हो या अमिताभ बच्चन की चर्चित फिल्म पीकू। इन सबमें दुनिया भर के लोगों ने गुड़गांव को देखा।■

सौरभ पाण्डेय

३ दिसम्बर १९६३ को जन्म। सॉफ़्टवेयर तथा निर्यात-प्रबन्धन में डिप्लोमा एवं प्रबन्धन की डिग्री। त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वगाथा' एवं अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'अंजुमन' में सलाहकर्ता, ई-पत्रिका 'ओपन बुक्स ऑनलाइन डॉट कॉम' के प्रबन्धन-सदस्य, 'परों को खोलते हुए' श्रृंखला का सम्पादन। काव्य-संग्रह 'इकड़ियाँ जेबी से' एवं छन्द-विधान पर छन्द मञ्जरी' प्रकाशित। सम्प्रति- केन्द्रीय सरकार की विभिन्न परियोजनाओं को संचालित करने के क्रम में राष्ट्रीय स्तर की कॉर्पोरेट इकाई में नेशनल हेड।

संपर्क : एम-II/ए-१७, एडीए कॉलोनी, नैनी, इलाहाबाद-२११००८ ईमेल- saurabh312@gmail.com

मुद्दा

हिन्दी और आंचलिक भाषाओं की सच्चाई

> *भाषा केवल सम्प्रेषण का यंत्र भर नहीं होती। यह किसी राष्ट्र, भूभाग व जाति समूह का इतिहास व परम्परा की नदी होती है। भाषा की अनदेखी राष्ट्र व समाज को नष्ट करने की साजिश होती है।*
>
> *–श्याम सखा श्याम*

भाषा वस्तुतः किसी भूभाग के जन की भावनाओं, जन की मनोदशा, जन के मूलभूत आचरण, जन की उच्चारण क्षमता तथा उच्चारण ग्राह्यता के सापेक्ष संप्रेषण की कुल शाब्दिक सुव्यवस्था का परिपालन हुआ करती है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी की वर्तमान दशा को समझना आवश्यक है। इसी समझ के आधार पर हिन्दी के इतिहास के साथ-साथ इसके भूभाग की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं को भी समझना होगा, जिनके संस्कार इस भूभाग के आमजन की संप्रेषणीयता के क्रम में महती भूमिका निभाते हैं। इनके संस्कारों से हिन्दी भी प्राणवान होती रही है। परन्तु, इस निर्विवाद सत्य को झुठलाने की कुचेष्टाएँ हुई हैं। या, इस तथ्य को तोड़ते-मरोड़ते हुए मनमने ढंग से स्वीकारने और नकारने का प्रयास होता रहा है। उस हिसाब से देखा जाय तो श्याम सखा श्याम की उपर्युक्त उक्ति उन सभी क्षेत्रीय अथवा आंचलिक भाषाओं के लिए भी उतना ही सत्य है, जितना कि हिन्दी के लिए। यदि हिन्दी भूभाग की अन्यान्य आंचलिक भाषायें सबल न हुईं, तो इसका सीधा असर हिन्दी और इसके स्वरूप पर ही पड़ेगा। स्पष्ट कर दूँ कि जो विद्वान हिन्दी को देश के विशिष्ट भूभाग की समृद्ध भाषा के रूप में देखना चाहते हैं, किन्तु आंचलिक भाषाओं के प्रति उनके मन में अन्यमनस्कता व्याप्त है, तो यह उनकी संकुचित दृष्टि का ही द्योतक है। ऐसे हिन्दी-हितैषी विद्वान हिन्दी के होने का अर्थ ही नहीं जानते हैं। या, भले ही नासमझी में, किन्तु इसकी अस्मिता को समझ पाने में भारी भूल कर रहे हैं।

अंग्रेज़ी का प्रशासनिक महत्त्व ही भारत में उसके विस्तार का कारण बना था। अंग्रेज़ी भारतीय आंचलिक भाषाओं से रस नहीं पाती थी, अपितु यह उनके कन्धों पर बलात लदी हुई थी या लादी गयी थी। अंग्रेज़ी की कृत्रिम अनिवार्यता (आज के संदर्भ में भी यह उतना ही सत्य है) को महत्त्व दिया गया था और इस कारण आमजन द्वारा जो-जो आरोप अंग्रेज़ी पर लगाये जाते थे, जाने-अनजाने कमोबेश वही आरोप आज हिन्दी पर भी लगने लगे हैं। यह सारा कुछ भले ही किसी षडयंत्र का हिस्सा हो न हो, लेकिन हिन्दी भाषा के हितैषियों की अतिवादी सोच ही हिन्दी पर ऐसे दोषारोपणों का कारण बनी है। इनका लाभ उठा कर, आज स्थिति यह है, कि हिन्दी के सामान्य प्रयोगकर्ता एक वर्ग द्वारा साम्राज्यवाद के पक्षधर घोषित किये जाने लगे हैं। या, कई बिन्दुओं पर आमजन जो हिन्दी-हितैषी है, उसे ऐसा मतावलम्बी साबित किया जा रहा है, जिसकी सोच संकुचित हुआ करती है। अथवा साम्प्रदायिक है! स्थिति यह है कि केवल अ-हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही नहीं, अब मान्य हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी के विरोध की सुगबुगाहट बढ़ने लगी है। इस विरोध के कारणों पर यदि संतुलित ढंग से मनन-मंथन

साभार - विजय बिसवाल

न किया गया, तो भारतीय भूभाग में मुख्यभाषा के तौर पर सर्वमान्य हुई हिन्दी का महती नुकसान होना तय है। इन सबके पीछे के कारण जाने ही जाने चाहिये। कि, हिन्दी की यह स्थिति वस्तुतः हुई क्यों है? हिन्दी को क्यों उसके भूभाग की अन्यान्य आंचलिक भाषाओं का हंता माना जा रहा है? जबकि सच्चाई यह है कि कोई भाषा यदि काल-कलवित होती है, तो कोई अन्य भाषा उसके लिए उतना बड़ा कारण नहीं हुआ करती, जितना कि कलवित भाषा की अपनी विसंगतियाँ हुआ करती हैं। ऐसी विसंगतियों में, आज के माहौल में उक्त भाषा के बने रहने की नाकाबलियत और अर्थोपार्जन हेतु प्रयोगकर्ताओं के लिए सार्थक अवसर मुहैया करा पाने में अक्षमता प्रमुख हुआ करती हैं। अन्यथा, किसी भाषा पर अन्य भाषाओं को खा जाने का दोषारोपण अक्सर राजनीतिक ही हुआ करता है। हिन्दी को वर्चस्ववादी बताकर उसके प्रति आंचलिक भाषा-भाषियों के मन में यदि सन्देह पैदा किया जा रहा है, तो हिन्दी-हितैषियों को सचेत होना ही होगा कि वस्तुतः वो कौन सी शक्तियाँ हैं जो भारतीय भूभाग की पैदाइश हिन्दी को अंग्रेज़ी के समकक्ष रखने या मनवाने पर आमादा है? भारतीय परिवेश के एक बड़े भाग में हिन्दी को अपने समानान्तर बैठा हुआ देखने को बाध्य हुई अंग्रेज़ी कहीं पिछले दरवाज़े से तो हिन्दी पर आक्रमण का वातावरण नहीं बनवा रही है? इस वातावरण के तारी हो जाने में जाने-अनजाने सहयोगी होते हैं वो हठी हिन्दी-हितैषी जो भाषा इकाइयों की अस्मिता और प्रयोग के नाम पर अतिवादी रूप अख़्तियार किये बैठे रहते हैं।

वस्तुतः, हिन्दी की मुख्यभाषा के रूप में स्थापना के प्रारम्भिक दौर से, यानि संविधान सभा में भाषायी बहस के समय से ही, ऐसे-ऐसे हठी और क्लिष्ट मानसिकता के घोर सैद्धांतिक लोग सामने आते रहे हैं, जो हिन्दी को तथाकथित राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने के नाम पर हिन्दी-क्षेत्र की आंचलिक किन्तु प्राचीन और कई अर्थों में समृद्ध भाषाओं की कृत्रिम दरिद्रता का ढिंढोरा पीटने में अधिक रुचि लेते रहे हैं। उनकी रुचि न तो इन आंचलिक भाषाओं के वज़ूद और इतिहास का पता करने में रही है, न ही ढंग से उन्होंने इन क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को खँगाला ही है। जो कुछ काम ग्रियर्सन जैसे विद्वान कर भी गये हैं, उसके आगे इस क्षेत्र में किसी ने कोई महती योगदान किया हो, ऐसा कम ही हुआ है। यही नहीं, ऐसे हठी और अहंवादी हिन्दी-हितैषियों ने, आश्चर्य है, कि अपने प्रयासों में कायदे से संविधान में राजभाषा से सम्बन्धित परिचर्चाओं के रेकॉर्डों को भी उलटने-पलटने की कोशिश नहीं की है। या जान-बूझ कर सत्य को आमजन से छुपाये रखा है। वस्तुतः, संविधान सभा की किसी कार्रवाई में हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के तौर पर प्रस्तावित किया ही नहीं गया है। अलबत्ता, पुरुषोत्तमदास टण्डन या राजाजी जैसे कुछ वरिष्ठजन अवश्य हिन्दी के लिए 'राष्ट्रभाषा' शब्द पर आपत्ति प्रकट करने वालों के प्रति असहज रहे थे। जब तक गाँधीजी रहे, व्यावहारिक बोलचाल में उनका हिन्दी के प्रति आग्रह बना रहा। अन्यथा, संविधान सभा के सदस्यों ने हिन्दी के लिए 'राष्ट्रभाषा' शब्द को 'विशेषण' की तरह अपनाने के बावज़ूद इस शब्द को संविधान के अनुच्छेद ३४३ में जुड़वाने में कोई तत्परता नहीं दिखायी। यह एक ऐसा सत्य है, जो 'हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है' की घोषणा को मात्र छलावा साबित करने के लिए पर्याप्त है। यह एक सूत्री वाक्य अपने आप में बहुत बड़ा भ्रम है। साथ ही साथ, हिन्दी को भारत की मुख्यभाषा के तौर मनवाने वालों की अतिवादी सोच ने भावनात्मक ही नहीं, कई भयंकर तथ्यात्मक भूलें भी की हैं। कहा जाये तो, इस हम्माम में बहुत सारे नामधारी हिन्दीवादी नंगे नज़र आते हैं।

फिर, हिन्दी प्रदेश की कई समृद्ध आंचलिक भाषाओं को हिन्दी की सहयोगी बोलियों के रूप में परिभाषित कर एक ऐसा कृत्रिम वातावरण बनाया गया, जिसके कारण हिन्दी भाषा हेतु बनने वाली सर्वमान्यता का मार्ग स्वयमेव अवरुद्ध होने लगा है। इस संदर्भ में किसी मुख्यभाषा को लेकर 'रक्षा में हत्या' का इससे बढ़िया उदाहरण और किसी देश में नहीं मिलता। आश्चर्य तो तब होता है, जब कुछ मुख्य तथ्य सामने आते हैं। देश में भाषा को लेकर ही दुविधा नहीं है। बल्कि देश के 'पुकार नाम', देश के 'गान या गीत', देश में 'प्रशासनिक संचालन-व्यवस्था' तक में दुविधा की स्थिति दिखती है। संविधान सभा में भाषा सम्बन्धी अन्यान्य चर्चाओं में जिस अंग्रेज़ी के हटाने की बात होती रही, जिस अंग्रेज़ी के विरोध में उस समय के कई-कई अ-हिन्दी भाषा-भाषी नेतागण भी

> *वो कौन सी शक्तियाँ हैं जो भारतीय भूभाग की पैदाइश हिन्दी को अंग्रेज़ी के समकक्ष रखने या मनवाने पर आमादा है? भारतीय परिवेश के एक बड़े भाग में हिन्दी को अपने समानान्तर बैठा हुआ देखने को बाध्य हुई अंग्रेज़ी कहीं पिछले दरवाज़े से तो हिन्दी पर आक्रमण का वातावरण नहीं बनवा रही है?"*

> एक बड़े भूभाग की समृद्ध आंचलिक भाषाओं को बलात हिन्दी की बोलियाँ घोषित कर उनके वज़ूद को ही ओछा प्रमाणित कर उनसे नज़रें फेर ली जाय, तो यह किस श्रेणी की सोच है? अवश्य ही, विद्वानों ने अपने इस तरह के व्यवहार की बदौलत आने वाले दिनों के दुष्परिणामों पर सोचा ही नहीं था।

उत्साहित दिखते थे, वह अंग्रेज़ी तो संपर्क भाषा के रूप में बनायी रखी गयी, हिन्दी के वज़ूद को ही हास्यास्पद बना दिया गया! राजभाषा अधिनियम यानी Official Languages Act १९६३, किसी 'राष्ट्रभाषा' की बात ही नहीं करता, बल्कि कार्यालयीन अन्य कई भाषाओं की चर्चा करता है। उन सभी भाषाओं में से एक हिन्दी भी है। यानी संविधान सभा की कुल चर्चाओं का परिणाम यही हुआ कि हिन्दी अन्य मान्य भाषाओं के साथ-साथ 'राज-काज की भाषा' मात्र हो कर रह गयी। इसी 'राज-काज की भाषा' को बोलचाल में 'राजभाषा' की संज्ञा दे दी गयी। कहने का तात्पर्य है, कि वह अधिनियम मात्र हिन्दी को ही 'राजभाषा' के रूप में स्थापित कराने का अधिनियम था ही नहीं, बल्कि उस अधिनियम का शीर्षक Official Languages, अर्थात कार्यालयीन भाषाएँ, प्रयुक्त हुआ था। हिन्दी प्रेमी जनता की भावनाओं के साथ इससे बड़ा खिलवाड़ और ऐसा घृणित धोखा और कुछ हो सकता है क्या? बहुसंख्य जनता आज तक इस भावनात्मक भ्रम में जी रही है कि हिन्दी उसकी राष्ट्रभाषा या राजभाषा है। उस पर तुर्रा ये कि, हिन्दी की समृद्धि तथा इसके विकास के नाम पर एक लम्बे समय तक राजभाषा परिषद की ओर से अंग्रेज़ी के मानक शब्दों की जगह हिन्दी के मानक शब्दों को गढ़ने की क़वायद चली है। उस क़वायद की परिणति यह हुई है कि अंग्रेजी शब्दों के असंवेदनशील कृत्रिम अनुवाद बनाये और थोपे गये हैं! इन सबसे किसका भला हुआ है? हिन्दी का तो कत्तई नहीं हुआ है।

जहाँ तक हिन्दी के भाषायी विकास के विभिन्न चरणों को जानने का प्रश्न है, तो यह इस परिप्रेक्ष्य में जानना उचित होगा कि क्या वे चरण ठीक वही हैं, जो हिन्दी क्षेत्र में पहले से विद्यमान विभिन्न आंचलिक भाषाओं के रहे हैं? क्या हिन्दी तथा पूर्वांचल की आंचलिक भाषाओं की पृष्ठभूमि समान है? आश्चर्य होगा कि इन दोनों प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक हैं। जहाँ हिन्दी का उद्भव शौरसेनी और आगे कौरवी भाषाओं से हुआ मान्य है, वहीं पूर्वांचल की सभी भाषाओं यथा, अवधी, भोजपुरी, भोजपुरी की विभिन्न उपत्यकाएँ, मगही या मैथिली आदि भाषाओं का विकास प्राच्य भाषा से प्रसूत मागधी तथा अर्द्धमागधी से माना जाता है। अर्थात अवधी या भोजपुरी या मगही या मैथिली आदि को जिस तरह से हिन्दी की सहयोगी बोलियाँ कहकर प्रचारित किया गया, वह अपने आप में एक और शातिराना भ्रम है, जिसमें इस क्षेत्र के लोगों को वर्षों बलात उलझाये रखा गया है।

पूर्वांचल की प्राचीन क्षेत्रीय भाषाओं और भाषा के तौर हिन्दी के बीच शब्दों का आदान-प्रदान एक बात है और भाषागत मूल विन्यास में साम्य होना या न होना एकदम से दूसरी बात है। हिन्दी द्वारा भोजपुरी या अवधी या मैथिली या बुन्देली भाषा के शब्दों का अपनाया जाना बहुत बाद की घटनाएँ हैं और इसके अपने कारण हैं। हिन्दीभाषा के आधुनिक काल में भाषागत पुरज़ोर विकास संभव ही नहीं होता, यदि अवधी या भोजपुरी बोलने वाले विद्वान इस यज्ञ सरीखे कार्य के लिए स्वयं को उत्सर्ग न करते। ये विद्वान, जैसा कि समझ में आने वाली बात है, सायास या अनायास अपने साथ आंचलिक भाषाओं से शब्द ले कर आये। हिन्दी चूँकि एक जीवंत भाषा है, अतः वे आयातित शब्द हिन्दी के शब्दकोश में बग़ैर किसी हुज्जत के स्थान पाते गये। हिन्दी का विकास हो, इससे किसी को क्या ऐतराज़ हो सकता है? ऐतराज़ है भी नहीं। किन्तु, एक बड़े भूभाग की समृद्ध आंचलिक भाषाओं को बलात हिन्दी की बोलियाँ घोषित कर उनके वज़ूद को ही ओछा प्रमाणित कर उनसे नज़रें फेर ली जाय, तो यह किस श्रेणी की सोच है? अवश्य ही, विद्वानों ने अपने इस तरह के व्यवहार की बदौलत आने वाले दिनों के दुष्परिणामों पर सोचा ही नहीं था। यही कारण है कि आज तथाकथित हिन्दीभाषी भूभाग में ही आंचलिक भाषाओं की मान्यताओं को लेकर आंदोलन प्रारम्भ हो गये हैं। इन ज़मीनी आंदोलनों के प्रति उत्साह एवं उत्कट भाव की हालत यह है, कि इन क्षेत्रों के भाषा-भाषियों को भावनात्मक स्तर पर सरलता से बहकाया जा सकता है। इस क्रम में ज्वलंत उदाहरण भी परिलक्षित हैं, अवधी या भोजपुरी या अन्य आंचलिक भाषाओं में धर्म विशेष के साहित्य अचानक उपलब्ध होने लगते हैं। वैसे यह आज उठाया गया कोई कदम नहीं है। 'हिन्दी, उर्दू और खड़ी बोली की ज़मीन' में हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद के रविनन्दन सिंह लिखते हैं- 'फोर्ट विलियम कॉलेज ने हिन्दी गद्य लेखन के क्षेत्र में जो काम किया उसका लाभ इसाई मिशनरियों ने उठाया। उन्होंने महसूस किया कि उत्तर भारत में ब्रजभाषा से काम न चलेगा, न ही उर्दू से। उन्होंने सरल खड़ी बोली को अपना माध्यम बनाया।' यही धार्मिक संस्थाएँ अब अवधी, भोजपुरी या बुन्देली जैसी भाषाओं का प्रयोग कर रही हैं। क्या हिन्दी के समानान्तर आंचलिक भाषा-भाषियों की भावनाओं की तुष्टि

ऐसे ही प्रयासों से होगी? भाषा-शुभचिंतक क्या ये सोच कर आश्वस्त होते रहेंगे कि, चलो ज़मीनी स्तर पर इसी बहाने भाषा का प्रचार तो हो रहा है!

इस भाषायी प्रकरण में सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि हिन्दी अपने मूल क्षेत्र (दिल्ली से सटा पश्चिमी उत्तरप्रदेश) से बाहर आज तक किसी क्षेत्र की मूलभाषा नहीं बन पायी है। कुछ शहरी पॉकेट को छोड़ दें तो यह बन भी नहीं सकती। इन अर्थों में, 'हिन्दी हमारी मातृभाषा है' जैसा सूत्रवाक्य भी ज़मीनी सच्चाई को झुठलाता हुआ है। भोजपुरी, भोजपुरी की उपत्यकाएँ, अवधी, मगही, मैथिली, बुन्देली, राजस्थानी, भाटी आदि भाषाएँ ही नैसर्गिक मातृभाषा हैं। हिन्दी एकभाषा के तौर पर किसी के जीवन में अमूमन उसके कैशोर्यावस्था में प्रवेश करती है। मातृभाषा और व्यवहार भाषा में जब अंतर ही पता न हो, तो हम बनावटी भावनाओं की अतिरेकी नौका पर सवार संप्रेषणीयता के सागर में हम कितनी लम्बी दूरी तय कर सकते हैं?

हिन्दी भूभाग में विद्यमान आंचलिक भाषाएँ हिन्दी को सामर्थ्य देती हैं जैसे वाक्य आंचलिक भाषाओं की विवशता का प्रमाण बन कर समक्ष न आयें, कि उनका अपना कोई व्याकरण व्यवहार ही नहीं है। निस्संदेह, हिन्दी भारत की सहज स्वीकार्य व्यवहार भाषा हो चली है। परन्तु, इसकी पहचान, तदनुरूप मान्यता किसी भ्रम की नींव पर आधारित न हो। अन्यथा ऐसे असहज एवं कमज़ोर नीव से ख़ामियाज़ा हर हाल में हिन्दी को ही उठाना होगा। आंचलिक भाषाओं का न केवल शब्द-भण्डार हिन्दी के शब्द-भण्डार से अलग एवं विपुल है, बल्कि कई अर्थों में चमत्कारी भी है! इसका लाभ यदि हिन्दी को मिलता है तो यह भाषा के तौर पर हिन्दी के लचीलेपन का ही द्योतक है। बिना उदार शब्द-संचरण के हिन्दी ही कमज़ोर होगी। यही हाल साहित्य का है। मैथिली, भोजपुरी और अवधी जैसी भाषाओं का साहित्य हिन्दी-साहित्य की आधारभूमि है। फिर, आंचलिक भाषाओं का व्याकरण भी हिन्दी के व्याकरण, जो कि कौरवी भाषा के व्याकरण पर आधारित है, से भिन्न है। होना ही है क्योंकि दोनों तरह की भाषाओं की पृष्ठभूमि भिन्न है। इस तथ्य का उचित सम्मान हिन्दी विचारक अवश्य करें। सर्वोपरि, इस तथ्य को स्वीकार कर लेने में क्या उज्र कि हिन्दी किसी राज्य की भाषा है ही नहीं, जो कि वास्तविकता भी है। हिन्दी दिल्ली के आसपास सटे पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा में ही मूल रूप से बोली जाती है। हिन्दी इसी क्षेत्र की मूलभाषा है भी। अन्य भूभाग के लिए तो यह अपनायी गयी भाषा है। यदि हिन्दी राज्य-निर्पेक्ष भाषा घोषित हो गयी तो, अ-हिन्दी भाषी राज्यों द्वारा हर समय मचाया जाता शोर कि 'हिन्दी उन पर लादी जा रही है' का शमन होगा। अ-हिन्दी भाषी राज्यों की चिन्ता उनकी मूलभाषा की अस्मिता एवं उसकी अक्षुण्ण प्रतीत

'हिंदी' शब्द विदेशियों का दिया हुआ है। फारसी में संस्कृत की 'स' ध्वनि 'ह' हो जाती है, अतः सिंध से हिंद और सिंधी से हिंदी बना। शब्दार्थ की दृष्टि से हिंद (भारत) की किसी भाषा को हिंदी कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में मुसलमानों ने इसका प्रयोग इस अर्थ में किया भी है पर वर्तमानकाल में सामान्यतः इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड को भाषा के लिए होता है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

हिन्दी क्षेत्र में अनेक उपभाषाएँ हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी उपभाषाओं में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह उपभाषाएँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। इन उपभाषाओं की उपबोलियाँ भी हैं जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी क्षेत्र की उपभाषाओं में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, झारखंडी, कुमाउँनी, मगही आदि।■

हिन्दी की दशा में सकारात्मक परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण 'बाज़ार' है। आज का बाज़ार यह जानता है कि इस देश में अपनी पैठ बनाने के लिए भारतीय भाषाओं का महत्त्व अंग्रेज़ी से कहीं अधिक है। ग्रामीण बाज़ार जो कि नयी संभावनाओं और पूरी धमक के साथ अपनी उपस्थिति बना रहा है, विगत दो दशकों में इसने 'बाज़ार' के सारे पुराने मानक तथा समीकरण ध्वस्त कर दिये हैं।

पहचान है। इसके प्रति वे अत्यंत संवेदनशील हैं। फिर भी, उन्हें अंग्रेज़ी से चिढ़ नहीं है, किन्तु हिन्दी से है। कारण कि उनकी दृष्टि में हिन्दी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, बिहार आदि जैसे उत्तर भारतीय राज्यों की भाषा है, जिसको उनके राज्य की भाषा को गौण कर उन पर लादी जाती है। यदि समृद्ध आंचलिक भाषाओं को राज्यों की भाषा का दर्ज़ा मिल जाय, तो यह समस्या ही समाप्त हो जाय कि हिन्दी के नाम पर किसी अन्य राज्य की भाषा लादी जा रही है। फिर तो, जैसे अंग्रेज़ी, वैसे हिन्दी! हिन्दी का विरोध करता कोई न दिखेगा। हिन्दी को 'संपर्क भाषा' के रूप में मान्यता मिलना तथा समूचे देश में उसका सहज रूप से व्यवहृत होना, हिन्दी की तार्किक प्रतिष्ठा का भी कारण होगा। जिस हिन्दी को आजतक 'राष्ट्रभाषा' और 'राजभाषा' जैसी संज्ञाओं से 'चिढ़ाया' जाता रहा है, उसकी ताकत आज भी प्रशासन प्रदत्त सहुलियतें नहीं है।

आंचलिक भाषाओं से हिन्दी का सहयोग बना ही तब रहेगा, जब हिन्दी उनसे बराबरी का व्यवहार करे। हिन्दी क्षेत्र की आंचलिक भाषाएँ और हिन्दी परस्पर शत्रु नहीं हैं। परन्तु, यह भी सच है, कि उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध बलात खड़ा किया गया है, ताकि अंग्रेज़ी का वर्चस्व प्रासंगिक बना रहे। यह एक महाभारी षडयंत्र है। किन्तु यह भी सच है, कि ग्रामीण अंचलों और शहरी क्षेत्रों में पुख़्ता जड़ों वाली अखिल भारतीय सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी की ग्राह्यता में आशातीत सुधार हुआ है। एक-दो आग्रही अ-हिन्दी भाषी राज्यों को छोड़ दिया जाय तो आज हिन्दी अंग्रेज़ी को हर राज्य में सार्थक चुनौती देने की स्थिति में है। हिन्दी की आज की स्थिति को देखें, तो एक भाषा के तौर पर इसका सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और वैचारिक विन्यास पिछले पाँच दशकों में बहुत बदला है। आज की हिंदी विविध उद्देश्यों को पूरा कर सकने वाली और समाज के विभिन्न तबकों की बौद्धिक व रचनात्मक आवश्यकताओं को अभिव्यक्त कर सकने वाली एक संभावनाशील भाषा मात्र नहीं रह गयी है, बल्कि यह एक स्थापित भाषा हो चुकी है। अब आवश्यकता है कि और तार्किक ढंग से हिन्दी में वैज्ञानिक तथा कानूनी शब्दावलियाँ विकसित की जायें। शिक्षण-संस्थानों में हिन्दी माध्यम से विज्ञान तथा समाज शास्त्र को पढ़ने-पढ़ाने वालों की संख्या बढ़े। तात्पर्य यह है कि हिन्दी के कन्धों पर मात्र साहित्य का भार न हो, बल्कि तकनीक और विज्ञान के विषयों को भी हिन्दी में सहजता से पढ़ा और पढ़ाया जा सके। बिना अँग्रेजी बोले जब चीन, जापान, ब्रिटेन को छोड़ पूरा यूरोप और रूस आधुनिक हो सकते हैं, तो फिर, भारत क्यों पिछड़ने लगता है? बुद्धिजीवी केवल अँग्रेजी के माध्यम से ही श्रेष्ठ विचार शाब्दिक और साझा कर सकते हैं, जैसी भाषायी मक्कारी अवश्य बन्द हो।

परन्तु, यह जानना आवश्यक है, कि क्या ऐसी कोई स्वीकार्यता हिन्दी के अपने प्रभामण्डल के कारण है, या पारिस्थिक उपयोगिता के कारण है? क्योंकि हिन्दी को अचानक राज्य या प्रशासन से कोई सहयोग मिला हो ऐसा नहीं हुआ है। वस्तुतः हिन्दी की दशा में इस सकारात्मक परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण 'बाज़ार' है। आज का बाज़ार यह जानता है कि इस देश में अपनी पैठ बनाने के लिए भारतीय भाषाओं का महत्त्व अंग्रेज़ी से कहीं अधिक है। ग्रामीण बाज़ार जो कि नयी संभावनाओं और पूरी धमक के साथ अपनी उपस्थिति बना रहा है, विगत दो दशकों में इसने 'बाज़ार' के सारे पुराने मानक तथा समीकरण ध्वस्त कर दिये हैं। इस नये वातावरण में आमजन की एक क्रेता के तौर पर महत्ता बढ़ी है। इन परिस्थितियों में बिना आमजन को शामिल किये 'बाज़ार' विस्तार नहीं कर सकता। यहीं वह कारण है, कि बाज़ार ही आंचलिक भाषाओं की अस्मिता को सचेष्ट होने के लिए खाद-पानी दे रहा है। अच्छा या बुरा, परन्तु, आज की सच्चाई यही है। इस संदर्भ में यह स्वीकारना ही होगा कि हिन्दी को ठोस धरातल पर अपने पाँव मज़बूत बनाये हुए बढ़ने की आवश्यकता है। समस्त वायवीय एवं अन्यथा तथ्यों से हिन्दी के अतिवादी चिन्तक छुटकारा पा लें, उतना ही अच्छा। इसके बाद यदि हिन्दी को नया परिचय और नयी पहचान मिल रही है, तो इसका हर तरह से स्वागत होना चाहिये। हिन्दी को 'व्यवहार भाषा' अथवा 'संपर्क भाषा' के तौर स्वीकारा जाय, जो अभी तक अंग्रेज़ी समझी-जानी जाती रही है। क्यों न हिन्दी तथा अ-हिन्दी भाषी राज्य के लोग अंग्रेज़ी छोड़ आपस में हिन्दी में संवाद करें? यदि हिन्दी को 'संपर्क भाषा' के रूप में अपना लिया गया, तो सारी समस्याएँ ही समाप्त हो जायेंगी।■

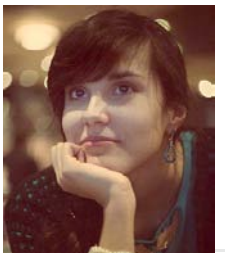

अन्या शप्रान

१९९३ में यूक्रेन के एक छोटे से नगर में जन्म। हिंदी सीख रही हैं। भारतीय साहित्य, इतिहास, संस्कृत, दर्शन शास्त्र, भूगोल में विशेष रुचि। एक साल संस्कृत सीखी।

सम्पर्क : levinia19@mail.ru

मन की बात

हिंदी-रूसी अनुवादक बनने का स्वप्न

मेरा नाम अन्या शप्रान है। मेरी उम्र बीस साल की है। मैं विद्यार्थी हूँ और विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा में दर्शन शास्त्र सीख रही हूँ। मुझे पढ़ना बहुत पसंद है। हिंदी के अलावा मैं भारतीय साहित्य, इतिहास, संस्कृत, दर्शन शास्त्र, भूगोल भी सीख रही हूँ। विगत एक साल के दौरान मुझे संस्कृत पढ़ायी जाती थी।

मेरा जन्म १९९३ में यूक्रेन के एक छोटे से शहर में हुआ। वहाँ मैं ग्यारह साल तक रही। इसके बाद मेरा परिवार रशिया में मॉस्को के एक क्षेत्र में जाकर वहाँ रहने लगा। हमारा संयुक्त परिवार बहुत बड़ा है। जिसमें माताजी, पिताजी, मेरे दो छोटे भाई, दादाजी और दादीजी हैं। मेरे माँ-पिता कामकाजी हैं। माताजी एक कंपनी की निदेशिका हैं। मेरे दो भाई स्कूल जाते हैं और नानीजी और नानाजी यूक्रेन में रहते हैं।

अब मैं रूस की शिक्षा के बारे में बताना चाहती हूँ। हो सकता है कि आपको यह अजीब लगे लेकिन सच्चाई यही है कि मुझे स्कूल में दी जाने वाली आधुनिक शिक्षा पद्धति अच्छी नहीं लगती। मेरी इस बात के कई कारण हैं, जिसमें से पहला तो यही है कि रूस के माध्यमिक स्कूल में छात्रों के लिए रुचि के विषयों का कोई विभाजन नहीं है। मतलब ये है कि मुझे मानविकी विषय बहुत पसंद है जैसे रूसी भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, सामाजिक

> मेरे पसंदीदा लेखक प्रेमचंद हैं। हिंदी पाठों पर मैं 'ठाकुर का कुआँ', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'बड़े भाई साहब' की कहानियाँ पढ़ चुकी हूँ। दो कहानियों पर हमने फिल्में देखी। इतिहास के पाठों पर मैंने महात्मा गांधी के बारे में बहुत पढ़ा है।

विज्ञान। लेकिन रूस के माध्यमिक स्कूल में ज्यादा विषय गणितीय और प्राकृतिक विज्ञान पढ़ाये जाते हैं। मेरा विचार है कि स्कूल में अलग-अलग विभाजन होना चाहिए या मानविकी विषयों की या प्राकृतिक विषयों का।

दूसरे यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकांश शिक्षक अपना विषय बहुत रुचि लेकर नहीं पढ़ाते। शायद वे अपने विषय के प्रति विरक्त हो चुके होते हैं अथवा शायद कम वेतन की वजह से पढ़ाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रहती है।

तीसरा, आज रशिया में बहुत बड़े पैमाने पर स्कूल शिक्षा में सुधार लागू किया जा रहा है। रूसी शिक्षा में निःशुल्क विषय जिनको शिक्षा मंत्रालय से मंजूरी दी गई है, यों हैं- रूसी भाषा, साहित्य, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, इतिहास, सामाजिक विज्ञान (अर्थशास्त्र और कानून सहित) कला (संगीत, ललित कला, विश्व ललित

मेरी स्कूल में रुचि साहित्य अच्छी तरह पढ़ाया जाता था। मेरी शिक्षिका ने मुझे कविता के मग्न रहने में मदद कर दी थी। मुझे पुश्किन, लेरमोन्तोव, मायाकोव्स्कीय के काव्य तथा रजत आयु की कवयित्री (Silver Age's poets) जैसे मरीना त्सवेतायेवा, अन्ना अख्मातोवा के काव्य बहुत पसंद है। लेकिन अपने विश्व विद्यालय में मुझे भारतीय गद्य ज़्यादा अच्छा लगता है।

साहित्य) प्रौद्योगिकी (श्रम), शारीरिक शिक्षा, भूगोल, प्राकृतिक इतिहास (दुनिया), विदेशी भाषा, देशी (गैर रूसी) भाषा और साहित्य, विज्ञान और सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, बुनियादी जीवन सुरक्षा।

अगर छात्र दूसरी विदेशी भाषा या कॉलेज में प्रवेश करने के लिए कुछ विषय सीखना चाहेगा तो उसको पैसा देना पड़ेगा। इसके अलावा अतिरिक्त मंडली में भाग लेना जैसे नाटक-मंडली और ऐच्छिक विषय सीखना अभी मुफ्त नहीं होता लेकिन नये रशिया से पहले सोवियत संघ के समय शिक्षा पाना सभी को मुफ्त में मिलता था। रूसी स्कूल शिक्षा की तुलना में उच्च शिक्षा मुझे ज़्यादा पसंद है। युवा लोग जान-बूझकर विद्यालय, विश्वविद्यालय या कॉलेज में दाखिल हो सकते हैं और अपनी इच्छा से विषय चुन सकते हैं। कोई भौतिकी पढ़ता है तो कोई सामाजिक विज्ञान पढ़ता है।

रूसी शिक्षा प्रणाली तीन स्तरों में विभाजित है- बी-ए., एम.ए., पी-एच-डी। रूस में शिक्षा के लिये निजी और राजकीय विश्वविद्यालय हैं। निजी विश्वविद्यालय में सशुल्क शिक्षा होती है, जबकि सरकारी विश्वविद्यालय में सशुल्क और निःशुल्क शिक्षा मिलती हैं। मतलब कुछ विभागों में छात्र शिक्षा के लिये फीस देते हैं, जैसे तकनीकी और चिकित्सा विद्यालय, विमान-निर्माण कॉलेज, रेल विश्वविद्यालय, संचार संस्थान आदि। पहले सोवियत संघ में उच्च शिक्षा पूरी तरह निःशुल्क थी। लेकिन विश्वविद्यालय में दाखिल होना बहुत मुश्किल था। स्कूल शिक्षा के ज्ञान की सहायता से छात्र विश्व विद्यालय प्रवेश कर सकता था।

मुझे साहित्य बहुत पसंद था। मेरे स्कूल में रुचि साहित्य अच्छी तरह पढ़ाया जाता था। मेरी शिक्षिका ने मुझे कविता के मग्न रहने में मदद कर दी थी। मुझे पुश्किन, लेरमोन्तोव, मायाकोव्स्कीय के काव्य तथा रजत आयु की कवयित्री (Silver Age's poets) जैसे मरीना त्सवेतायेवा, अन्ना अख्मातोवा के काव्य बहुत पसंद है। लेकिन अपने विश्व विद्यालय में मुझे भारतीय गद्य ज़्यादा अच्छा लगता है।

मेरे पसंदीदा लेखक प्रेमचंद हैं। हिंदी पाठों पर मैं 'ठाकुर का कुआँ', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'बड़े भाई साहब' की कहानियाँ पढ़ चुकी हूँ। दो कहानियों पर हमने फिल्में देखी। इतिहास के पाठों पर मैंने महात्मा गांधी के बारे में बहुत पढ़ा है। और 'बापू' कविता भी मैं पढ़ चुकी हूँ। धर्म के इतिहास के पाठों पर मैंने हिंदू धर्म बुद्ध, जैनिज़्म, सिख धर्म, मुस्लिम धर्म के बारे में सीखा है। ग्रेजुएशन के बाद मैं अनुवादक बनना चाहती हूँ और हिंदी से रूसी में हिंदी उपन्यास का अनुवाद करना चाहती हूँ। मास्को में भारतीय दूतावास में जवाहरलाल नेहरू का सांस्कृतिक केंद्र है। वहाँ हिंदी अध्यापक-प्रोफ़ेसर डॉ. गुलाब सिंह रूसी लोगों को हिंदी सिखाते हैं। पिछले सेमेस्टर में वे हमारे विश्वविद्यालय में भी आया करते थे तथा हमें हिंदी पढ़ाते थे। इनकी हिंदी सुनते-सुनते हम हिंदी प्रेमी बन गये हैं। ■

डॉ. बागेश्री चक्रधर

३ जनवरी १९५४ को हाथरस में जन्म। एम.ए. (हिन्दी), बी.एड. पी-एच.डी., संगीत प्रभाकर (शास्त्रीय गायन)। देश-विदेश में कविता पाठ किया। आकाशवाणी व दूरदर्शन की कलाकार हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'तानसेन', 'मकरंद ही ठीक है' (मुक्तक संकलन), 'व्यावहारिक समीक्षा का पहला कदम', 'समीक्षा माने ज्ञानराशि'। संगीत विषयक लेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्प्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सम्पर्क : Bageshri@chakradhar.com

तथ्य

विदेशी छात्रों की कारकपरक त्रुटियां

जो विदेशी छात्र एवं छात्राएं हिंदी सीखने के लिए भारत आते हैं अथवा अपने ही देश में हिंदी सीखते हैं, उनकी सीमाएं और शक्तियां भिन्न प्रकार की होती हैं। प्रत्येक छात्र अपने देश की भाषा की संरचना के अनुसार हिंदी को समझने की चेष्टा करता है। अनेक देशों में अंग्रेज़ी के माध्यम से हिंदी सिखाई जाती है। कर्ता, क्रिया और कर्म की क्रमिकता में हिंदी वाक्य संरचना अंग्रेज़ी विन्यास के लगभग उल्टी होती है। अंग्रेज़ी के प्रीपोज़ीशंस को जब वे हिंदी पर लागू करने का प्रयास करते हैं तो विभक्तियां बदल जाती हैं अथवा ग़ायब हो जाती हैं। कारक चिह्नों का प्रयोग उल्टा-पुल्टा हो जाता है।

दूसरी बात यह कि वे पुस्तकों और शब्दकोशों के माध्यम से हिंदी व्याकरण और शब्द-रूपों को जानने का प्रयास करते हैं। कई बार सुखद आश्चर्य होता है कि जो हिंदी शब्द हमारे देश में आम बोलचाल में नहीं प्रयुक्त होते, वे उनको शब्दकोशों के माध्यम से ज्ञात होते हैं। अब से लगभग पच्चीस वर्ष पहले रूस की कुछ छात्राएं हमारे घर आईं थीं। मेरा पुत्र रॉक क्लाइम्बिंग पर गया था। उन्होंने पूछा, कहां गया है तो मैंने बताया कि वह अपने स्कूल की ओर से रॉक क्लाइम्बिंग के लिए गया है। वे रॉक क्लाइम्बिंग समझी नहीं, क्योंकि उस काल में रूसी लोगों को अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं आती थी। मैं तरह-तरह से बताने का प्रयास करती रही कि पहाड़ पर चढ़ते हैं। एक खेल होता है। मिलकर ऊपर चढ़ते हैं। रस्सी ले जाते हैं। इतने सारे वर्णन के बाद अचानक इरीना साह्क्यान ने कहा 'ओह, पर्वतारोहण'! रूसी कन्या के मुख से पर्वतारोहण शब्द का शुद्ध उच्चारण सुनकर मैं हैरान रह गई।

विदेशी छात्र भाषा को लगन और निष्ठा से सीखते हैं। शब्दों के प्रति उनका आकर्षण जिज्ञासा से पूर्ण और तल्लीनता से भरा होता है, लेकिन विभक्तियों वाली ग़लतियां प्रायः सभी विदेशी विद्यार्थी करते हैं। मैं ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर के एक स्कूल में कुछ समय के लिए पढ़ने-पढ़ाने जाती रही हूं। वहां अंग्रेज़ी सीखती थी और हिंदी सिखाती थी। सिडनी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में भी मैंने विदेशी विद्यार्थियों से सम्पर्क साधा जो हिंदी और उर्दू सीखते थे। वहां प्रो. हाशिम दुर्रानी विभिन्न देशों से आए हुए बालक-बालिकाओं को हिंदी-उर्दू सिखाते थे। मैंने कुछ समय वहां के विभाग में भी बिताया और ये पाया कि कारक विभक्तियों की जो ग़लतियां वे करते हैं, वे प्रायः इस प्रकार हैं।

कर्ता कारक (Nominative Case) संबंधी ग़लतियां

'ने' के प्रयोग :

१. मैं उसे चॉकलेट दिया। (मैंने उसे चॉकलेट दी)
२. लोग बाज़ा बजाए। (लोगों ने बाजे बजाए।)
३. जॉर्ज पूछा। (जॉर्ज ने पूछा।)
४. आर्टी मछली खाया। (आर्टी ने मछली खाई।)
५. मार्कोस पैन दिया। (मार्कोस ने पैन दिया।)

'ने' का प्रयोग कर्ता कारक में होता है। इन उदाहरणों में

> कर्म कारक में 'को' विभक्ति होती है, जो प्रायः कर्म के साथ लगती है। अनेक क्रियाओं के साथ भी 'को' जुड़ता है, जैसे- दौड़ना, सोना, पुकारना, डांटना आदि। सर्वनामों के साथ 'को' परसर्ग जुड़ता है। 'को' परसर्ग का प्रयोग कर्ता के साथ भी हुआ करता है।

हमने देखा कि 'ने' का प्रयोग नहीं किया गया। यह भी देखा कि क्रिया को कर्म के स्थान पर कर्ता से जोड़कर लिंग-निर्णय लिया गया।

भारतीय मूल का एक ऑस्ट्रेलियाई बालक हमारे घर आया करता था। हिंदी फ़िल्म-संगीत उसे बेहद पसंद था। 'ने' का प्रयोग सिखाने के लिए मैंने उसे फ़िल्म 'पाकीज़ा' का एक गीत सुनाया- 'इन्हीं लोगों ने ले लीना दुपट्टा मेरा।' गीत में 'इन्हीं लोगों ने' तीन बार दोहराया गया था। मैंने भी उसे तीन बार दोहराकर बताया कि 'ने' लगाना क्यों आवश्यक है। इसी प्रकार दूसरा गीत भी उदाहरण बतौर सुनाया- 'श्याम ने बंसी बजाई, राम की लीला रंग लाई।'

गीतों के ज़रिए कर्ता कारक के बहुत सारे उदाहरण दिए जा सकते थे। अर्थात 'ने' के प्रयोग की बहुत सारी समस्याओं का निदान फ़िल्मी गीतों के माध्यम से भी संभव लगा।

कर्म कारक (Objective Case) संबंधी ग़लतियां

'को' के प्रयोग :

कर्म कारक में 'को' विभक्ति होती है, जो प्रायः कर्म के साथ लगती है। अनेक क्रियाओं के साथ भी 'को' जुड़ता है, जैसे– दौड़ना, सोना, पुकारना, डांटना आदि। सर्वनामों के साथ 'को' परसर्ग जुड़ता है। 'को' परसर्ग का प्रयोग कर्ता के साथ भी हुआ करता है। 'को' के प्रयोग के व्याकरण में अनेक नियम हैं। इसके विस्तार में मैं नहीं जा रही, लेकिन 'को' से संबंधित जो त्रुटियां होती हैं, उन पर ध्यान दिलाना चाहती हूं। एक मुख्य ग़लती यह होती है कि अनेक विदेशी छात्र 'को' की जगह 'का' का प्रयोग करते हैं।

–उसका जुकाम हो गया। (उसको जुकाम हो गया।)

'को' के प्रयोग की अन्य त्रुटियां

डेविड मार्कोस किताब दिया। (डेविड ने मार्कोस को किताब दी।)

फिलीपे बाज़ार जाना चाहिए। (फिलीपे को बाज़ार जाना चाहिए।)

हम लोग विश्वविद्यालय जाना चाहिए। (हम लोगों को विश्वविद्यालय जाना चाहिए।)

अब आप जाना चाहिए। (अब आपको जाना चाहिए।)

वह लड़की देखा। (उसने लड़की को देखा।)

'को' का प्रयोग सिखाने के लिए कई गीत बताए जा सकते हैं, जैसे

- छूकर मेरे मन को
- सांसों को ज़रूरत है तेरी
- चुरा लिया है तुमने जो दिल को

करण कारक (Instrumental Case) ग़लतियां

'से' के प्रयोग :

करण कारक में 'से' से संबंधित त्रुटियां होती हैं, जहां विदेशी छात्रों द्वारा अपनी भाषा की सोच के कारण, 'से' के स्थान पर कोई अन्य परसर्ग लगा दिया जाता है।

मेरा पर्स को रूमाल गिरा। (मेरे पर्स से रूमाल गिरा।)

तुम औज़ार को काम करो। (तुम औज़ार से काम करो।)

मैंने सब्ज़ी चाकू में काटा। (मैंने सब्ज़ी को चाकू से काटा।)

अन्नू रमेश को मिलकर आया। (अन्नू रमेश से मिलकर आया।)

मैं रेल को आई हूं। (मैं रेल से आई हूं।)

'से' का प्रयोग सिखाने के लिए संभावित गीत, जैसे

बीड़ी जलइले जिगर से पिया....

जीवन से भरी तेरी राहें....

जी हम तुम चोरी से, बंधे इक डोरी से.....

सम्प्रदान कारक (Dative Case) संबंधी ग़लतियां

'के लिए' के प्रयोग

धीरज पिता को कुर्ता लाया। (धीरज पिता के लिए कुर्ता लाया।)

सेहत को व्यायाम करो। (सेहत के लिए व्यायाम करो।)

फ़िल्मी गीत

- ग़म उठाने के लिए मैं तो जिए जाता हूं
- लव के लिए कुछ भी करेगा
- हम बने तुम बने इक दूजे के लिए
- कल की हसीन मुलाक़ात के लिए
- शादी के लिए मैंने रज़ामंद कर ली।

अपादान कारक (Ablative Case) संबंधी ग़लतियां अपेक्षाकृत कम होती हैं

'से' के प्रयोग/ पृथक होने तथा तुलना का बोध

फ़िल्मी गीत

- तुम मुझसे दूर चले जाना ना, मैं तुमसे दूर चली जाऊंगी।

- आज पुरानी राहों से मुड़ के मुझे आवाज़ न दो।
- तेरे चेहरे से नज़र नहीं हटती, नज़ारे हम क्या देखें?
- इस मोड़ से जाते हैं।

संबंध कारक (Genetative Case) संबंधी ग़लतियां

'का' 'की' 'के' 'रा' 'री' 'रे' के प्रयोग :

संबंध कारक में का, के, की से जुड़ी हुई त्रुटियां प्रायः एकवचन और बहुवचन से जुड़ी हुई हैं। कई बार का, के, की के स्थान पर को का प्रयोग किया जाता है। जैसे

चालीस रुपया को आम। (चालीस रुपए के आम।)

बीस रुपया के पैंसिल। (बीस रुपए की पैंसिल।)

शैली को दुकान। (शैली की दुकान।)

लकड़ी को मेज। (लकड़ी की मेज।)

प्लास्टिक को खिलौना। (प्लास्टिक का खिलौना।)

मारिया का लड़की। (मारिया की लड़की।)

तुमका हाल क्या है? (तुम्हारा हाल क्या है?)

विदेशी छात्र प्रायः 'रा' 'री' 'रे' की ग़लतियां कम ही करते हैं। कई बार संबंध कारक में 'वाले' शब्द का प्रयोग अतिरिक्त कर दिया जाता है। यह अपोस्ट्रफ़ी एस के प्रयोग के समय होता है। जैसे अशोक्स बुक।

– अशोक वाले का पुस्तक।

फ़िल्मी गीतों से उदाहरण

- पल पल दिल के पास तुम रहते हो।
- नज़र के सामने, जिगर के पास, कोई रहता है।
- आजकल तेरे मेरे प्यार के चरचे हर ज़ुबान पर।
- दिल के झरोखे में तुझको बिठा के (दूसरा 'के' 'कर' के अर्थ में है)
- रिमझिम के तराने ले के आई बरसात (यहां दूसरा 'के' भिन्नार्थी है)

> हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में सिखाते समय, हिंदी के निजी-विशिष्ट चरित्र पर ध्यान दिलाया जाना चाहिए। वाक्य संरचना हिंदी की अपनी प्रकृति के अनुरूप हो और इस प्रकार सीखने, सिखाने की प्रक्रिया में विभक्ति संबंधी त्रुटियां दूर की जाएं।

अधिकरण कारक (Locative Case) संबंधी ग़लतियां

'से' के प्रयोग :

विभक्तियों को परिवर्तित करने की ऐसी ही त्रुटियां अधिकरण कारक में, 'में', 'पे' और पर के प्रयोगों में देखी जा सकती हैं।

मेज को पुस्तक है। (मेज पर पुस्तक है।)

अमीर से क्रोध आता है। (अमीर पर क्रोध आता है।)

मंदिर को शांत रहा चाहिए। (मंदिर में शांत रहना चाहिए।)

तुमने पर्स कितना को खरीदा? (तुमने पर्स कितने में खरीदा?)

साइमन के घर को फ्रिज है। (साइमन के घर में फ्रिज है।)

फ़िल्मी गीतों से उदाहरण

- लागा चुनरी में दाग, छुड़ाऊं कैसे, घर जाऊं कैसे?
- मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे।
- कभी कभी मेरे दिल में ख़याल आता है (स्थानबोधक)
- किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसारर (स्थानबोधक)
- भोर भए पनघट पे मोहे नटखट स्याम सताए। (स्थानबोधक)
- कभी ख़ुद पे कभी हालात पे रोना आयाा (स्थानबोधक व समयबोधक)
- बदन पे सितारे लपेटे हुएए (स्थानबोधक)

सम्बोधन कारक (Vocative Case)

विदेशी छात्र संबोधन संबंधी ग़लतियां अपेक्षाकृत कम करते हैं। कभी कभी वे दुविधा में पड़ जाते हैं जब किसी संबोधन चिह्न की पुनरावृत्ति होती है अथवा कोई संबोधन चिह्न किसी शब्द में घुल-मिल जाता है। जैसे ओ ओ ओ ओओ अथवा ओह्हो, ओहरे आदि। फिल्मी गीतों के उदाहरण उनकी भ्रांतियां शीघ्र दूर कर सकते हैं।

फ़िल्मी गीतों से उदाहरण :

- ओ ओ ओ ओ ओ वुमनिया!
- ओअ ओओ, सजना, बरखा बहार आई, रस की फुहार लाई, अंखियों में प्यार लाई, ओअ ओओ, सजना।
- ओह रे ताल मिले नदी के जल में।
- माई री, मैं कासे कहूं पीर अपने जिया की माई री!
- क्रेज़ी किया रे।
- अरे रे अरे ये क्या हुआ?

हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में सिखाते समय, हिंदी के निजी-विशिष्ट चरित्र पर ध्यान दिलाया जाना चाहिए। वाक्य संरचना हिंदी की अपनी प्रकृति के अनुरूप हो और इस प्रकार सीखने, सिखाने की प्रक्रिया में विभक्ति संबंधी त्रुटियां दूर की जाएं। फ़िल्मी गीत इस क्षेत्र में सकारात्मक योगदान दे सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।■

अजय गर्ग

१३ अगस्त १९७२ को धूरी, जिला संगरूर, पंजाब में जन्म। गीतकार और फिल्म समीक्षक। अनेक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे। बेमकसद घुमक्कड़ी में रुचि। बारह देशों की यात्राएं कर चुके हैं। सम्प्रति - मुंबई में फ्री-लांस पत्रकारिता में संलग्न।

सम्पर्क : betterperson@gmail.com

धरती पर जन्नत है मालदीव

समंदर के गहरे नीले पानी में नीलम की अंगूठियों की तरह छितराए छोटे-छोटे द्वीपों की तस्वीरें जब भी देखता था तो उल्लासभरा सुकून मन में भर जाता था। भारत के दक्षिण में हिंद महासागर में मौजूद छोटे-से देश मालदीव के ये करीब ११०० द्वीप इस धरती को कुदरत के किसी नज़राने से कम नहीं हैं। करोड़ों साल से मूंगे के इकट्ठा होते जाने से बने ये द्वीप जब ऊपर से देखो तो हल्के नीले रंग के नज़र आते हैं और सफेद रेत वाले इनके किनारे समंदर में घुलते हुए लगते हैं।

बहुत बार होता कि एक बार - सिर्फ एक बार- इस नज़ारे को अपनी आंखों से देख पाऊं। पर वहां जाना और रहना इतना महंगा कि हर बार मन को मारना पड़ता। मालदीव के किसी रिज़ॉर्ट में रहने का मतलब विलासिता से रू-ब-रू होना है। कांच की तरह साफ पानी, शांत लहरें, शोर-शराबे से कोसों दूर समुद्र के किनारे आराम से किताब पढ़ना या कॉकटेल की चुस्कियां लेना, शानदार सी-फूड, सी-प्लेन की सवारी और चाहो तो पानी के अंदर सैर भी कर लो! यूं समझिए कि किसी बेहद ख़ूबसूरत ख़्वाब का सच होना!

> *भारत के दक्षिण में हिंद महासागर में मौजूद छोटे-से देश मालदीव के ये करीब 1100 द्वीप इस धरती को कुदरत के किसी नज़राने से कम नहीं हैं। करोड़ों साल से मूंगे के इकट्ठा होते जाने से बने ये द्वीप जब ऊपर से देखो तो हल्के नीले रंग के नज़र आते हैं।*

मेरा यह ख़्वाब हक़ीक़त में तब बदला जब पिछले साल दिसंबर में एक्वामरीन क्रूज़ शिप के चार दिन के टूर पर कोच्चि से मालदीव के लिए रवाना हुआ। मालदीव में जो तज़ुर्बे हुए सो हुए, इस सात मंज़िला जहाज़ से वहां तक की २४ घंटे की यात्रा भी अपने-आप में रोमांच लिए थी। यह मेरा तीसरा क्रूज़ ट्रिप था, पर यकीनन सबसे ज़्यादा यादगार। इस सफ़र का बेहतरीन पहलू यह था कि मालदीव के किसी रिज़ॉर्ट में रुके बिना ही एक ख़ूबसूरत देश की यात्रा हो गई और वहां के नज़ारे मेरे ज़हन में हमेशा के लिए क़ैद हो गए।

कोच्चि के वेलिंगटन द्वीप से एक्वामरीन शाम के धुंधलके में रवाना हुआ। इसमें १२०० लोग एक साथ सफ़र कर सकते हैं। डूबते सूरज की लालिमा के बीच यह धीमी रफ्तार के साथ सागर के सीने को चीरता आगे बढ़ा तो कई कल्पनाएं लहरों की तरह मन में हिलोरें लेने लगीं। ज़्यादातर लोग उस वक़्त क्रूज़ शिप के सन डेक पर थे। क्रूज़ शिप, मतलब- तैरता होटल; सन डेक, मतलब- जहाज़ की छत। सन डेक पर

सनसनाती हवा जब बालों से उलझती हुई निकलती है तो आज़ाद पंछी होने जैसा अहसास होता है।

एक्वामरीन में हर तरह की सहूलियत मौजूद थी- खाने-पीने से लेकर मौज-मस्ती तक। रेस्तरां में ऐसा कोई व्यंजन नहीं था जो मुंह में जाते ही घुल न जाता हो। बच्चों के लिए एक्टिविटी सेंटर, तो बड़ों के लिए जिम्नेज़ियम। चाहे तो छठे डेक पर मीठी धूप में स्विमिंग पूल में नहाकर निकलें और किनारे पर मौजूद पूल बार में बैठकर कॉकटेल की चुस्कियां लें। किस्मत के धनी लोगों के लिए कैसिनो है, तो हर किसी के लिए रात में डेढ़-दो घंटे का एंटरटेनमेंट शो भी है। थक-हारकर केबिन में लौटेंगे तो आरामदायक बिस्तर और सुकूनभरा माहौल जल्द ही आपको थपकी देकर सुला देंगे।

कोच्चि से चलने के बाद अगली शाम हम मालदीव की राजधानी माले के निकट पहुंच गए। मोटरबोट हमें माले के तट तक ले गई। हमारे पास तीन घंटे थे घूमने-फिरने के लिए। माले छोटा-सा शहर है, लेकिन है बहुत प्यारा और व्यवस्थित। यहां कई जगह घूमने-फिरने लायक हैं, ख़ासकर इस्लामिक सेंटर। वहां के राष्ट्रपति का निवास बिल्कुल सड़क पर है, पर कोई गार्ड हमें वहां नज़र नहीं आया। हालत यह है कि कई बार तो राष्ट्रपति घर से पैदल ही निकल जाते हैं ज़रूरी बैठकों के लिए। वहां की सड़कों पर दो घंटे में घूमते-घामते पता ही नहीं चला कि माले का एक हिस्सा पूरा घूम लिए। सब्ज़ी बाज़ार देखा, मछली बाज़ार के पास से निकले, कुछ शो-रूम में नज़र दौड़ाई और हो गया माले में घूमना।

मालदीव के तट के पास हमारा जहाज़ २४ घंटे तक रुका। वहां असल रोमांच अगली सुबह था। यहां दूर स्थित द्वीपों तक जाने के लिए सी-प्लेन हैं जो पानी पर फिसलते हुए उड़ान भरते हैं और करीब एक-डेढ़ किलोमीटर की ऊंचाई पर उड़ते हैं। हमें १०५ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित रंगाली द्वीप जाना था जहां कॉनराड रिज़ॉर्ट है। वहां तक ३५ मिनट की उड़ान के दौरान जो दिखा वो जन्नत के सिवा कुछ नहीं था। छोटे-छोटे द्वीप यूं लग रहे थे जैसे गहरे नीले आसमां में तश्तरियां तैर रही हों। कह सकते हैं कि यह उड़ान

कोच्चि से चलने के बाद अगली शाम हम मालदीव की राजधानी माले के निकट पहुंच गए। मोटरबोट हमें माले के तट तक ले गई। हमारे पास तीन घंटे थे घूमने-फिरने के लिए। माले छोटा-सा शहर है, लेकिन है बहुत प्यारा और व्यवस्थित।

मालद्वीप की मेरी यात्रा का सबसे रोमांचक पहलू थी। लेकिन उसके बाद रिज़ॉर्ट पर बिताए कुछ घंटे मन तो मतंग कर देने के लिए काफी थे। रिज़ॉर्ट में भी कई नज़ारे हमारे इंतज़ार में थे। समंदर में दूर तक फैले कॉटेज और उनमें कांच के फर्श! मानो लहरों के ऊपर रह रहे हों। यहां जो कुछ था सब वैभव की दास्तां था।

हिल्टन ग्रुप के इस रिज़ॉर्ट को दो बार दुनिया के बेहतरीन होटल का खिताब मिल चुका है। यह रिज़ॉर्ट असल में दो द्वीपों पर बसा है जो एक-दूसरे से आधा किलोमीटर की दूरी पर हैं और इन्हें जोड़ता है समंदर के ऊपर बना रास्ता। इस रास्ते के बीचो-बीच लकड़ी से बना प्लेटफॉर्म है जहां सी-प्लेन उतरते हैं। यहां से लहराती हुई दो बड़ी-बड़ी बांहों जैसे रैम्प शुरू होते हैं जो दोनों द्वीपों तक जाते हैं। इनमें से बडे वाले द्वीप पर बीच विला हैं जबकि छोटे द्वीप पर वॉटर विला। हरेक बीच विला में फव्वारे वाला गार्डन है और निजी स्विमिंग पूल भी। वहीं, वॉटर विला ऐसे घर हैं जिन्हें पानी के बीच लकड़ी के लट्ठों पर बनाया गया है। ये चार तरह के हैं- सुपीरियर, डीलक्स, प्रीमियम और सनसेट। इनमें सनसेट विला में रहने का मतलब ख़ालिस विलासता है। यहां एक दिन का किराया करीब ८ लाख रुपए है। आपको एक प्राइवेट वेटर २४ घंटे मुस्तैद मिलेगा। द्वीप के एक कोने में बने कांच के फर्श वाले इन विला में घूमते डबलबेड, सेटेलाइट टीवी, हाई पॉवर दूरबीन के अलावा आउटडोर स्विमिंग पूल और जकूज़ी भी हैं। गुनगुनी धूप में रंग-बिरंगी मछलियां देखते हुए नहाओ और दूर-दूर तक देखने वाला कोई नहीं। इस विला में

कदम रखते ही लगा कि दूर तक फैला शांत समंदर जैसे मेरा गुलाम हो गया हो; मैं इसके सीने पर ठाठ से चल रहा हूं और यह मेरे पांव चूमने को बेताब हो।

मालदीव के टापुओं की ख़ासियत है कि ये बेहद साफ हैं और इनके किनारे झक सफेद महीन बालू रेत से बने हैं। जहां ज़मीन समंदर में उतरती है वहां पानी रंगहीन नज़र आता है। थोड़ा आगे जाने पर हरा, थोड़ी ज्यादा दूरी पर हल्का नीला और बीच समंदर में गहरा नीला। समंदर की गहराई बढ़ने के साथ पानी का रंग भी बदलता नज़र आता है। इन्हीं गहराइयों के ऊपर बना है सन डेक जहां सनसनाती हवा के थपेडे सहते हुए धूप सेंकने का अलग ही मज़ा है। रिज़ॉर्ट में

सात रेस्तरां और तीन बार के अलावा स्पा सेंटर भी है। यहां का खाना लाजवाब था- हल्का, स्वादिष्ट और पौष्टिक।

अब चलते हैं इस रिज़ॉर्ट की दो ऐसी ख़ासियत देखने जिनके लिए ज़मीन के नीचे जाना होता है। ये हैं- समुद्र तल से १२ फीट नीचे बना अंडरवॉटर रेस्तरां और छह फीट नीचे बना अंडरग्राउंड वाइन सेलार। वाइन सेलार में ६०० किस्म की वाइन की १० हज़ार से ज़्यादा बोतलें हैं। यहां एक्सक्लूसिव डिनर लिया जा सकता है, जहां आपके ऑर्डर के मुताबिक वाइन परोसी जाएगी। मद्धम रोशनियों के बीच डिनर करते वक़्त टेबल पर हर सीट के आगे लगी एलसीडी पर वाइन से जुड़ी जानकारियां दी जाती हैं। इसी तरह, इथा रेस्तरां है जो समंदर के नीचे बना है। छोटी घुमावदार सीढ़ियां उतरते वक़्त ये अहसास नहीं होता कि चंद पलों बाद किस नज़ारे से सामना होगा। रेस्तरां में कदम रखते ही लगा मानो एक दूसरी दुनिया में आ गए हों। चारों तरफ पानी, तैरती मछलियां, समुद्री पौधे, छोटे-छोटे पत्थर और इस सबके बीचों-बीच मेजों व कुर्सियों की कतारें। ये क्या है.. अरे! ये तो वही गोताखोर हैं जो कुछ देर पहले किनारे पर थे और पानी में उतरने की तैयारी कर रहे थे। चेहरे पर मास्क लगाए ये गोताखोर मछलियों की तरह पानी के अंदर तैर रहे हैं और मैं ये नज़ारा पानी के अंदर बैठकर देख रहा हूं, और हमारे बीच में सिर्फ कांच की दीवार है।■

मालदीव में ११९२ छोटे-छोटे कोरल द्वीप हैं। इन द्वीपों के २६ द्वीप समूह हैं। कुल दो सौ ही द्वीपों पर स्थानीय आबादी रहती है। कुल १२ द्वीपसमूहों पर ८९ रिसॉर्ट सैलानियों के लिए हैं। मालदीव इस ख़ूबसूरती के साथ समुद्र पर बसा हुआ है कि अगर आप राजधानी माले में न हो तो वहां आपको हर पल समुद्र पर ही होने का अहसास मिलेगा। मालदीव द्वीप समूह आधिकारिक तौर पर मालदीव गणराज्य, हिंद महासागर में स्थित एक द्वीप देश है, जो मिनिकॉय आईलेंड और चागोस अर्किपेलेगो के बीच २६ प्रवाल द्वीपों की एक दोहरी चेन, जिसका फैलाव भारत के लक्षद्वीप टापू की उत्तर-दक्षिण दिशा में है, से बना है। यह लक्षद्वीप सागर में स्थित है। मालदीव के प्रवाल द्वीप लगभग ९०,००० वर्ग किलोमीटर में फेला क्षेत्र सम्मिलित करते हैं, जो इसे दुनिया के सबसे पृथक देशों में से एक बनाता है। मालदीव गणराज्य की राजधानी और सबसे बड़ा शहर माले है। पारंपरिक रूप से यह राजा का द्वीप था, जहां से प्राचीन मालदीव राजकीय राजवंश शासन करते थे और जहाँ उनका महल स्थित था। मालदीव जनसंख्या और क्षेत्र, दोनों ही प्रकार से एशिया का सबसे छोटा देश है। कुछ विद्वानों का कहना है कि मालदीव नाम संस्कृत शब्द माँलाद्विपा मतलब 'द्वीपों का हार' से उत्पन्न हुआ है। कुछ मध्ययुगीन अरब यात्री जैसे इब्न बतूता इन द्वीपों को 'महल दिबियत' कहते थे।■

डॉ. विजय मिश्र

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित भौतिक विज्ञानी एवं संस्कृत विद्वान। कवि के तौर पर न्यू इंग्लैंड, दक्षिण एशिया के अनेक देशों में चर्चित एवं सफल यात्राएँ कीं। अनेक गरिमापूर्ण कवि सम्मेलनों में भागीदारी। विगत १८ बरसों से हार्वर्ड विश्वविद्यालय में सालाना भारतीय कविता पाठ का आयोजन कर रहे हैं।

सम्पर्क : १८०, बेडफोर्ड रोड, लिंकन, एमए. ईमेल : misra.bijoy@gmail.com

विमर्श

वाल्मीकि रामायण : आधुनिक विमर्श-११

अयोध्या नगरी

अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद सहयोग - संजीव त्रिपाठी

रामायण ग्रन्थ की शुरुआत में ऋषि वाल्मीकि उस 'आदर्श' मनुष्य की खोज के बारे में बताते हैं जो मनके चिंतन में है। उनको नारद ऋषि राम और रामायण कथा की रूपरेखा के बारे में बतलाते हैं। कहानी के नाटकीय विवरण के पश्चात, नारद ऋषि ने बताया कि राम 'अयोध्या' नगरी वापिस शासन करने आयेंगे। इस सन्दर्भ में वाल्मीकि ने अयोध्या नगरी का विस्तृत विवरण किया है। साहित्य में रामायण के बारे में इतिहासकारों और विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। एक वर्ग इसे काल्पनिक पौराणिक कथा बताता है, तो दूसरा इसे ऐतिहासिक घटना मानता है। पर इन सब चर्चाओं के बीच अयोध्या नगरी एक प्रमुख ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में खड़ी है। वाल्मीकि के द्वारा अयोध्या नगरी के बारे में दिये गये वर्णन से वहाँ के उच्च स्तरीय शहरी समाज, उत्तम नगर प्रणाली, चौड़ी सड़कें, उन्नत व्यापार और सक्षम सुरक्षा व्यवस्था का चित्र उभर कर सामने आता है।

भारत पुरातन समय से ही सुव्यवस्थित शहरी प्रणाली के लिए जाना जाता है। ग्रन्थ में किये गये वर्णन से अनुमान लगाया जा सकता है कि देश के विभिन्न भागों में कई उपनिवेश मौजूद थे जिन पर राजवंशीय प्रथा के द्वारा शासन किया जाता था। राजा के ज्येष्ठ पुत्र को युवराज घोषित किया जाता था। प्रत्येक राजा अपनी सुरक्षा के लिये सेना रखता था और सेना राजवंश के प्रति वफादार होती थी। राजा, प्रजा के लिये उचित न्याय व्यवस्था करता था और यह उसकी ही जिम्मेदारी होती थी कि राज्य में खुशहाली और सम्पन्नता का वातावरण हो। राजा को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय धर्म का अवश्य ही पालन करना चाहिये। राजा का असफल होना राज्य का पतन समझा जाता था। एक नगर अपने आप में उपनिवेश माना जाता था और उसका एक स्वतंत्र राज्य की तरह प्रशासन चलता था।

राजा दशरथ ने अयोध्या का राज्य अपने पिता अज से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था। वह इक्ष्वाकु कुल के वंशज थे, जिसमें बहुत पहले से राजशाही प्रथा का प्रचलन था। यह ज्ञात नहीं है कि यह राजवंश मूल रूप से अयोध्या का निवासी था या फिर किसी अन्य जगह से यहाँ विस्थापित हुआ था। वंशावली और कहानियों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुल परम्परागत राजवंशी था और उसका एक स्वर्णिम इतिहास रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि नगर धीरे-धीरे विकसित हुआ था। वाल्मीकि के वर्णन के अनुसार नगर सुव्यवस्थित, आबाद, समृद्ध और सांस्कृतिक था। नगर एक आत्मनिर्भर इकाई थी जिसके चारों तरफ कृषि भूमि और

कई गाँव थे। वाल्मीकि के विवरण से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आसपास के गाँव व्यवसाय और सुरक्षा के लिए नगर पर निर्भर थे।

वाल्मीकि के काव्य विवरण से अयोध्या नगर यथार्थ लगता है। यह ज्ञात नहीं है कि वाल्मीकि के समय नगर उस रूप में मौजूद था या साहित्यिक रूप से महत्वपूर्ण एक ऐतिहासिक नगर था। वाल्मीकि के अनुसार अयोध्या समतल धरातल पर आठ योजन (छ्यानवे मील) लम्बी और तीन योजन (चौबीस मील) चौड़ी थी। नगर में एक राजमार्ग और अन्य कई चौड़े-चौड़े मार्ग थे। मार्ग पर पानी का छिड़काव करना आम बात थी, जिससे गाड़ियों और आवागमन के कारण होने वाली धूल को दबाया जाता था। सड़कें चौड़ी थीं, जिससे रथ, घुड़सवार और सेना आसानी से कूच कर सके। कुछ खास अवसरों पर मार्ग को फूलों की पंखुड़ियाँ बिखेर कर सजाया जाता था।

नगर को चारों तरफ से सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर गहरी खाई और परिकोटा (दीवाल) बनाया गया था। रास्तों पर दरबाजे, गुम्बद और मेहराब बने हुये थे। मार्गों के दोनों तरफ दुकानें थीं। नगर हथियारों से लैस था और उनके रखरखाव के लिए अनेक कुशल कारिगर थे। नगर में ऊँची-ऊँची इमारतें थी, जिन पर राजकीय ध्वज लगे हुये थे और तोपें स्थापित थीं। नगर की सुरक्षा के लिए सेना के हृष्ट-पुष्ट पुरुष और पहलवान दिखाई दे रहे थे। अनेक कुशल सारथी सुन्दर भवनों में निवास करते थे। सैनिक जंगली जानवरों से द्वंद युद्ध करने में प्रशिक्षित थे, वे हथियारों से या बाहुबल प्रहार से भी उन्हें मार सकते थे। उस समय घोड़ा, हाथी, गाय, ऊँट और गधा

> अयोध्या नगरी की वास्तुकला संरचना, नगर प्रारूप, बहुमंजिला भवनों से कोई भी यह निष्कर्ष निकल सकता है कि उस समय वास्तुकला अभियांत्रिकी की जानकारी थी और लोग उसमें निपुण थे।

पालतू जानवरों में शामिल थे। व्यवसाय और राजकीय कार्यों के लिए अन्य राज्यों के राजकीय सदस्य नगर में देखे जा सकते थे। आम रास्तों पर दुकानें किराना और अन्य सामान से सजी हुई थी। नगर में पीने के लिए मीठा पानी और खाद्यान्न में चावल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। अयोध्या में भवन बहुमंजलीय थे और उनमें छज्जे और खिड़कियाँ भी लगी हुयीं थी। कुछ घर बड़े और रत्न जड़ित थे। उन घरों में आकर्षक वस्त्रों में सुसज्जित सुन्दर स्त्रियाँ रहती थीं। नगर में भाट, सारिका और गायकों की उपस्थिति कला के प्रोत्साहन को दर्शाती थी। नृत्यांगनाएं नगर के बगीचों और आमों के बागों में नाच करती हुयी देखी जा सकती थीं। नगर में कई धार्मिक स्थल थे, जहाँ नगरवासी पूजा-अर्चना और धार्मिक कर्मकांड करने आते थे। राजा, प्रजा के हित के लिये उच्च कोटि के पंडित और विद्वानों को आमंत्रित करते थे। नगर में जगह-जगह वैदिक पाठ और बौद्धिक शास्त्रार्थ होते हुये दिखाई पड़ते थे। नगर में रंग और गतिविधियाँ, सजी हुई शतरंज के चौखानों जैसी प्रतीत होती थी।

कर्तव्यनिष्ठ और धर्मपरायण होने के कारण राजा दशरथ ने 'राजर्षि' की पदवी प्राप्त थी। कथा को रोचक बनाने के लिये वाल्मीकि ने अयोध्या के नगर वासियों को मानवों में सर्वोत्तम बतलाया है। वह सत्यवादी, धार्मिक, विद्वान और खुशहाल थे। सभी पारिवारिक और धनी थे। खाद्यान्न प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था और देखभाल करने के लिये पालतू पशु थे। कोई भी निर्दय, असहाय, अशिक्षित या अधर्मी नहीं था। नागरिक सद्गुणी और जीवन में संयमी थे। सभी स्त्रियाँ चूड़ियों, बालियों और फूलों के गजरों से सजी हुई थीं। कोई भी क्षुद्र, अनाथ, दुराचारी या अनैतिक व्यवहार वाला नहीं था। सभी लोग रूपवान, सत्कारशील, उदार, शक्तिशाली और साहसी थे। वो सभी नित धार्मिक ग्रंथों का पठन पाठन करने वाले व राजा के प्रति वफादार थे। सभी नगरवासी दीर्घजीवी थे। सभी लोगों ने अपने कौशल और रुचि के अनुसार जीवन को प्रतियोगी और उल्लासपूर्ण बनाया हुआ था।

राजा जीवन की भोग विलासिता के लिये जाना जाता था। वह आसपास के जंगलों में शिकार के लिये जाता था। राजा ने अयोध्या में दूसरे राज्यों से हाथी और घोड़े मंगवाये थे। वह पशुओं की नई-नई नस्लें पैदा करने के लिये प्रोत्साहित करते थे। लोग सार्वजनिक बगीचों में आमोद-प्रमोद और मनोरंजन के लिये रात गुजारते थे। भव्य राजकीय उत्सवों को मनाने के लिये सभी प्रजाजन राजकीय दरबार में शामिल होते थे। नगर में राजकीय ठाट-बाट और तड़क-भड़क देखी जा सकती थी। कुछ विशेष अवसरों, जैसे राज्याभिषेक, राजकीय विवाह, विशेष अतिथि आगमन आदि के समय नगर को पुष्पों और अन्य साज-सज्जा की वस्तुओं से खास अंदाज़ में सजाया संवारा जाता था। राजकीय समारोहों में आम जनता को आमंत्रित किया जाता था, और बड़े राजकीय निर्णयों में उससे राय मशविरा भी लिया जाता था। जब प्रजा को राम के वनवास जाने की खबर मिली तो उन्होंने अपनी बैचैनी व्यक्त की। जनता ने राजा दशरथ के प्रति अपने गुस्से को जाहिर किया। जनता का असंतोष नगर का वातावरण ख़राब कर सकता था। स्त्रियों का नगर में एक अपना विशेष महत्व था। वह अपने घर के कामकाज में ध्यान न देकर राम के वापिस आने का बेसब्री से प्रतिदिन इन्तजार करती थी।

वाल्मीकि के व्याख्यान से, कुछ शहरी क्षेत्रों का पता चलता है और उसके आसपास के क्षेत्र में रहने वाले लोगों का सामाजिक जीवन शहर की अपेक्षा भिन्न था। राम की मुलाकात सरदार गुहा से उस समय हुई, जब सारथी सुमंत्र दल के साथ गंगा के किनारे प्रवास के समय गये थे, तो सरदार और लोगों ने बताया कि उन्हें शहरी वातावरण की तुलना में प्राकृतिक वातावरण में रहना ज्यादा पसंद है। यद्यपि सरदार की स्वतन्त्र जागीर थी, पर वह राजा के प्रति वफादार था और उसने राम के प्रति अपनत्व को प्रकट किया। उसने राम के दल को नदी पार करने में मदद की। उसने दल के प्रयासों का जायजा लेने की लिये नदी के दूसरे किनारे 'गुप्तचर' भी भेजे। राम ने भी भरत को शासन कला सिखलाते समय 'गुप्तचर' के बारे में जिक्र किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि शहर में लोगों ने सुरक्षा और समृद्धि के लिये अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने की जिम्मेदारी ले रखी थी। वाल्मीकि के अनुसार राजा दशरथ के महल की वास्तुकला का प्रारूप बहुत ही वृहद था। मजबूत दरवाजों की कई कतारें थीं, जिसमें हर द्वार पर योग्य द्वारपाल मौजूद होते थे। महल में राजा का कक्ष, राजदरबार और कई रनवास थे। रनवासों की सुरक्षा के लिये महिला पहरेदारों को रखा जाता था। राजा का कक्ष, मखमली कालीन और उत्तम दर्जे के साज-सज्जा के सामान से सुसज्जित था। कैकेयी का महल सबसे भव्य था। उसके महल के अन्दर बगीचा था और उसमें झरने थे और मूर्तियाँ भी लगी हुई थीं। यह स्पष्ट नहीं है कि वाल्मीकि ने इसके बारे में सुनी हुयी कहानियों से या अपने समकालीन समाज में अवलोकन के आधार पर यह वर्णन किया है।

अयोध्या नगरी की वास्तुकला संरचना, नगर प्रारूप, बहुमंजिला भवनों से कोई भी यह निष्कर्ष निकल सकता है कि उस समय वास्तुकला अभियांत्रिकी की जानकारी थी और लोग उसमें निपुण थे। भरत की देखरेख में कारिगरों ने जंगल में सड़क निर्माण का कार्य केवल दो सप्ताह में पूरा कर दिया था। ऐसा भी हो सकता है कि राजा के कुशल प्रशासन और मंत्रियों की बुद्धिमानी ने निर्माण कार्य को सरल और कारगार बना दिया हो।

राजा दशरथ की मृत्यु के समय भी मंत्रियों ने विशेषज्ञों की मदद से जड़ी बूटियों के द्वारा राजा के मृत शरीर को दो सप्ताह तक भरत के ननिहाल से वापस आने तक सुरक्षित रखा था। वाल्मीकि ने कहानी के अलग-अलग हिस्सों में उन्नत विज्ञान और उत्कृष्ट अभियांत्रिकी की झलकें दिखलायी हैं। कहानी में विवरण की जीवंतता रामायण के ऐतिहासिक होने के ज्यादा सबूत देती है, बजाय कवि की काल्पनिक कहानी के। ■

मानसश्री गोपाल राजू
सिविल लाइंस, रूड़की २४७ ६६७ (उत्तराखंड)
ईमेलः gopalraju08@gmail.com

परम्परा

सूफी नृत्य की रूहानी दुनिया

सूफीमत से हर कोई परिचित है। परन्तु अधिकांश लोगों को इसके मर्म, उद्देश्य और सबसे महत्त्वपूर्ण और चैतन्य बोध प्राप्ति आदि का सम्भवतः पूर्ण ज्ञान न हो। सूफीमत में देखा जाए तो इस्लाम से इतर उसमें बौद्ध, ईसाई मत, हिन्दुत्व, ईरानी, जर्थुस्त्रवाद के अंशों का सम्मिलन है। इस्लाम ने संगीत को और गाजे-बाजे आदि को कभी महत्त्व नहीं दिया परन्तु सूफी संतों ने उसको ही चैतन्य बोध का आधार बनाया। इसीलिए कट्टरवादियों की नजरों में सूफी काफिर भी बन गये।

सूफी मत में कर्मकाण्ड के स्थान पर दिल के हाल पर विशेष बल दिया गया है। उनका बस एक ही आग्रह है, जो भी करना है वह पूरे दिल से करना है। नमाज़ पढ़नी है तो वह पूरे दिल से पढ़ो। वजू करना है तो वह पूरे दिल से करो और उसमें इतना गहरा पैठ जाओ कि शरीर ही नहीं बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड अच्छे से साफ और पाक हो जाए। संगीत में जाना है तो उसमें पूरी तरह से सब कुछ भूलकर बस भक्ति भाव में डूब जाओ।

> सूफी मत में कर्मकाण्ड के स्थान पर दिल के हाल पर विशेष बल दिया गया है। उनका बस एक ही आग्रह है, जो भी करना है वह पूरे दिल से करो और उसमें इतना गहरा पैठ जाओ कि शरीर ही नहीं बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड अच्छे से साफ और पाक हो जाए।

सूफीमत का भारतवर्ष में देखा जाए तो व्यापक प्रचार हुआ। यहाँ कुल चार सूफी सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुए। बंगाल का सुहरावर्दी सम्प्रदाय, जिसके प्रवर्तक हज़रत जियाउद्दीन थे। अजमेर का चिश्तिया सम्प्रदाय, जिसके प्रर्वतक हज़रत अदब अब्दुल्ला चिश्ती थे। इसमें निजामुद्दीन औलिया, मलिक मौहम्मद, अमीर खुसरू आदि विश्व प्रसिद्ध संत हुए। तीसरा शेख अब्दुल क़ादिर जीलानी का कादिरिया और चौथा था नक्शवंदील जिसके प्रर्वतक ख्वाज़ा बहाउद्दीन नक्शबंदी थे। बिहार के सुप्रसिद्ध महदूम शाह इसी सम्प्रदाय के थे।

सूफी मतावलंबी दिखावे, तड़क-भड़क और ऐश्वर्य मय जीवन से दूर सादा जीवन और उच्च विचार पर बल देते थे और सबसे महत्त्वपूर्ण जो उनमें चलन में रहा वह था धार्मिक तथा नैतिक बंधनों से सर्वथा मुक्त रहना। नमाज़, रोजा, हज,

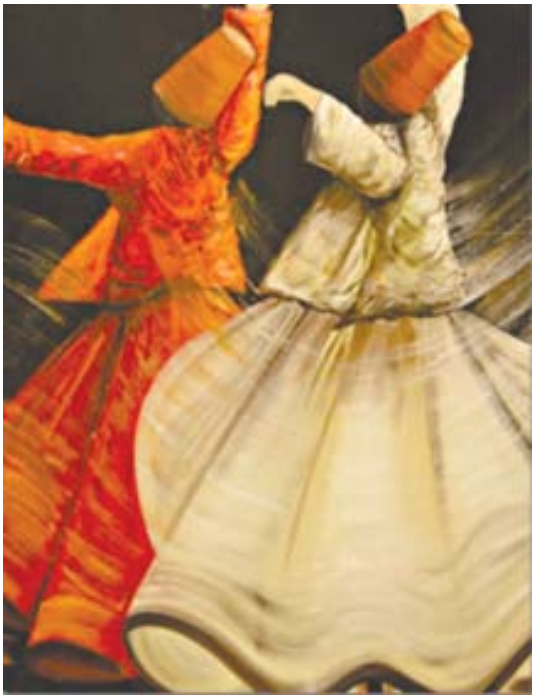

ज़कात, ज़िहाद आदि से तो उन सब सूफी संतों का कभी कोई लेना देना नहीं रहा।

सूफी मत में संगीत की धुन पर मस्ती से नाचना बहुत अधिक प्रचलित है। सूफी गायकी में अनेक प्रसिद्ध गायकों ने सूफी गीतों को जीवन्त कर दिया। उनके बोल, उनकी धुन, संगीत और मदमस्ती भरी गायकी सब ऐसा है कि सूफीमत से सर्वथा अंजान व्यक्ति भी एक बार को सुनकर मस्ती में झूमने लगे।

सूफीआना गीतों में क़व्वालीनुमा भजन 'दमादम मस्त कलन्दर' शायद ही कोई ऐसा संगीत प्रेमी होगा जिसने न सुना हो। इस अमर गीत के महानायक सुहारवर्दी सम्प्रदाय के हज़रत सखी लाल शाहबाज कलन्दर थे। सखी संत का वास्तविक नाम हज़रत सैयद उस्मान था। वह सुर्खलाल रंग का चोला पहनते थे इसीलिए वह लाल कलन्दर कहलाने लगे। यह गीत वस्तुतः सिंघ प्रान्त के हिन्दु संत झूलेलाल का एक भजन था जो पूरे भारतीय उपमहाद्वीपों में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। संत झूलेलाल को सम्बोधित करके उनके सामने माँ की फरियाद की गयी है इस कव्वालीनुमा भजन में। यह प्रसिद्ध गीत पंजाबी और सिंधी मिश्रित भाषा में है। अनेकों सूफी गायकों ने इस भजन को अपनी आवाज़ देकर मस्ती में लाखों लोगों को झुमाया है। इस अमर-गीत 'दमादम मस्त कलन्दर' का अर्थ है - हर सांस (दम) में मस्ती रखने वाला फ़क़ीर (कलन्दर)।

सूफी संत-फकीर अथवा कलन्दर चैतन्य बोध के लिए एक विशेष प्रकार का नृत्य करते हैं। इनका एक नाम सूफी दरवेश नृत्य भी है। शान्त, मध्यम और संगीतपूर्ण लयबद्धता में सूफी एक स्थान पर एन्टिक्लाक वाइज़ मस्ती में घूमते हैं। घूमने की गति मस्ती के साथ बढ़ती जाती है और अपनी-अपनी सामर्थ्य और शक्ति की अनुसार एक लट्टू की तरह घूमने लगती है। अध्यात्म-रूहानियत में रमने के बाद एक ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब अर्द्ध विक्षिप्त सा भक्त, संत ज्ञानी, सूफी, दरवेश, फकीर आदि मस्ती में झूमने लगता है, नाचने लगता है, अपने तन-मन की सुध खोकर। ईश प्रेम में लगभग पागल सा हो जाता है। इस अवस्था में उसका मन एकदम से निर्मल हो जाता है। मीरा, चैतन्य कृष्ण की रास लीला आदि इसके प्रमाण हैं। एक अन्य मार्ग भी है रूहानियत की इस भ्रामक और प्रचलित अवस्था को पाने का जिसमें लोग रमे हुए हैं। चरस, गांजा, भांग, शराब आदि मादक द्रव्यों में लिप्त होकर अपने को 'खोना' अब यह वाला खोना कौन वाला 'खोना' है, इसमें कोई तर्क -कुतर्क नहीं। अपने-अपने बुद्धि और विवेक से स्वयं अच्छे-बुरे का मनन कर लें। हाँ, वास्तव में यदि रमना है तब आप भी रमें इस रूहानी दुनिया के सूफी नृत्य में। परन्तु सर्वप्रथम यह अवश्य संकल्प ले लें कि विकृत मानसिकता और तामसिक खान-पान के माध्यम से कृपया इस मार्ग में जाने की न सोचें।

रूहानी दुनिया में जाने के लिये एक शान्त सा स्थान चुन लें। कोई भी ढीले-ढाले आरामदायक वस्त्र अवश्य धारण कर लें। मनपसंद सूफी संगीत की धुन-गीत बहुत ही मध्यम ध्वनि में बजा लें। एक स्थान पर स्थिर खड़े होकर अर्धखुली आँखों के साथ दाएं हाथ को कंधे के बराबर ऊंचा उठा लें और आकाश के समानान्तर हथेली खोल लें। बाएं हाथ को सामान्य स्थिति में लटका रहने दें। उसकी हथेली खोल कर धरती के समानान्तर फैला लें। इस मुद्रा में ही अपने स्थान पर खड़े हुए एन्टी क्लॉकवाइज़ घूमना शुरू करें। संगीत की धुन के साथ अपने घूमने की गति भी धीरे-धीरे बढ़ाते जाएं। किसी शारीरिक कमी के कारण घूमना कष्टकारी हो तो बलात् कदापि न घूमें। हाँ, अपने स्थान पर इस मुद्रा में अपनी क्षमतानुसार धीरे-धीरे घूम सकते हैं ताकि शरीर पर अतिरिक्त भार न पड़े। गति में तीव्रता के साथ गर्दन एक ओर को सुखद स्थिति में लटकती हो तो उसको लटका लें। कोई भाव, विचार मन में न आने दें। मस्त-मस्ती में संगीत की धुन पर मस्त होकर नाचते रहें.... और बस नाचते रहें। घूमते-घूमते चारों तरफ की वस्तुएँ अदृष्ट होने लगेंगी। सब कुछ अनदेखा कर इस चारों तरफ उत्पन्न हो रही अदृष्टता को बढ़ाते जायें और संगीत की धुन के साथ घूमने में रमते जाए, खोते जाए, तल्लीन होते जाएं। जब तक थककर चूर न हो जाएं, शरीर थककर निढाल न हो जाए तब तक सब कुछ भूलकर बस केवल रमने का ध्यान रखें। गिरने को होने लगें तो हल्के से शरीर को धरती पर छोड़ दें। पेट के बल धरती पर लेट जाएं। शरीर में कहीं भी तनाव न रह जाए। नाभि और धरती का स्पर्श अनुभव करके भावना जगाएं कि दोनों धीरे-धीरे एक ही हो रहे हैं और एक ऐसी अवस्था आ गयी है कि एक ही हो गए हैं। यह एक होना ही दिव्यता से मिलन की सीढ़ी है जो अभ्यास के साथ-साथ आपको एक रूहानी दुनियाँ में ले जाएगी। ■

रमेश जोशी

१८ अगस्त १९४२ को चिड़ावा, राजस्थान में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. और रीजनल कालेज ऑफ एज्यूकेशन भोपाल से बी.एड., पोरबंदर से पोर्ट ब्लेयर तक घुमक्कड़ी, प्राथमिक शिक्षण से प्राध्यापकी करते हुए केन्द्रीय विद्यालय जयपुर से सेवानिवृत्त। संप्रति : अमरीका में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा' के प्रधान संपादक। मूलतः व्यंग्यकार, गद्य-पद्य की ६ पुस्तकें प्रकाशित। ब्लॉग - jhoothasach.blogspot.com

संपर्क : 10046, Parkland Drive Twinsgburg, OH-44087 USA Email : joshikavirai@gmail.com

जश्न की हकीकत

नेक्स्ट टू गॉडलीनेस

सफाई के बारे में अंग्रेजी कहावत है- क्लीनली नेस इज नेक्स्ट टू गॉडलीनेस। ईश्वर के बाद सफाई ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो ईश्वर भी सफाई पसंद करता है- मन की सफाई, विचारों की सफाई, कर्मों की सफाई, वाणी की सफाई- एक निश्च्छल मन जो अंततः जीवन को भी सुन्दर, विराट और उदार बनाता है। अन्दर की इस सफाई के साथ जब बाहर की सफाई भी मिल जाती है तो जीवन पूर्ण बनता है। तभी ईश्वर की पूजा से पहले तन की, अपने आसपास की सफाई अपेक्षित मानी गई है। इस बाहरी सफाई से आतंरिक सफाई का मार्ग प्रशस्त होता है। दोनों प्रकार की ये सफाइयां निरंतर चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। और इन दोनों ही सफाइयों का जीवन शैली से घनिष्ठ संबंध है।

जब ये सफाइयाँ प्रतीकात्मक या कर्मकांड बन जाती हैं तो फिर वास्तव में काम कम होता है और दिखावा बढ़ जाता है। आजकल लगता है यह दिखावा अपने चरम पर है। जिस तरह से आजकल दुनिया के सभी देशों में देशभक्ति के नाम पर जिस तरह विभेद और घृणा फ़ैल रहे हैं वह चिंताजनक है। लेकिन हम यहाँ बाहरी सफाई या क्लीनलीनेस की बात करना चाहते हैं। यह सफाई पवित्रता से अलग है। पवित्रता एक विचार है और स्वच्छता अर्थात भौतिक सफाई एक स्पष्ट कर्म। इस मामले में हमारे यहाँ सफाई और पवित्रता का घालमेल कर दिया गया है। हम गंगा की सफाई को गंगा की आरती, भजन, आयोजन आदि प्रतीकात्मक बातों के माध्यम से देखने और दिखने लगे हैं। इसलिए आयोजन चालू हैं और गंगा अपनी स्वाभाविक रफ़्तार से मर रही है।

विदेशों विशेषकर अमरीका और योरप घूमने के लिए जाने वाले लोग वहाँ की सफाई के गुण गाते हैं और अपने यहाँ भी वैसा ही कुछ चाहते हैं। इस सन्दर्भ में अमरीका की सफाई व्यवस्था की बात की जाए।

अमरीका में सबसे ज्यादा पैकेजिंग पर जोर दिया गया है। हर चीज बहुत शानदार और आकर्षक पैकिंग में आती है जिसकी ग्राहक से अच्छी कीमत वसूल की जाती है और जो घर लाते ही एक अच्छी मात्रा में कूड़ा बन जाती है। किसी होटल में कुछ भी खाने जाएंगे तो वहाँ थर्मोकोल की प्लेट, गिलास, कटोरी और प्लास्टिक के चम्मच आदि उपलब्ध कराए जाते हैं जो दो-चार मिनट बाद ही उस भोजन से अधिक कूड़ा फैला देते हैं।

यदि व्यापार में प्रतियोगिता होती है तो पिज्जा का साइज बढ़ा दिया जाता है लेकिन कीमत नहीं घटाई जाती अर्थात सस्ते के नाम पर और कूड़ा। हर चीज बड़ी लापरवाही से बड़े-बड़े पोलीथीन के थैलों में डाल दी जाती हैं। हर चीज डिब्बा बंद- भोजन, पानी, ठंडा पेय, फल, सब्ज़ी सब कुछ।

> भारत की परम्परागत जीवन शैली कूड़ा फ़ैलाने की नहीं थी और फिर उस समय इस तरह के कृत्रिम पदार्थों का जिद्दी कूड़ा हुआ भी नहीं करता था। क्या हम अपने यहाँ ऐसी विनाशकारी और जल-ज़मीन को निगलने वाली जन्नत चाहेंगे? गॉड की धरती को बचाते हुए सफाई रखी जाए, यही गॉड की सेवा भी है।

खाओ कम और कूड़ा ज्यादा फैलाओ और वह भी दिन में चार-पाँच बार।

घरों से निकलने वाले इस कूड़े की सफाई के लिए उसी इलाके की निजी कम्पनियां काम करती हैं जो सप्ताह में एक बार अर्थात महीने में चार बार घर से कूड़ा ट्रक द्वारा ले जाती हैं। घरों में कोई हजार-पाँच सौ लीटर का एक बड़ा ड्रम होता है जिसमें रोज कूड़ा प्लास्टिक के थैलों में बंद करके डाल दिया जाता है और निश्चित दिन घर के सामने एक निश्चित स्थान पर रख दिया जाता है। कूड़ा उठाने वाला ट्रक आता है, उसका हेल्पर उस बड़े ड्रम को उस ट्रक से निकले एक मशीनी हाथ के सामने कर देता जिसे उठाकर वह मशीनी हाथ ट्रक के पिछले भाग में उलट देता है। थोड़ी-थोड़ी देर में उसे मशीनी दबाव से पिचकाकर छोटा आकर दे दिया जाता है। अंत में उसके बड़े-बड़े ब्लॉक बनाकर तय स्थान पर ज़मीन में दबा दिया जाता है। यदि कोई कूड़ा बड़ी साइज़ का होता है तो उसके लिए कहा जाता है कि आप इसे छोटे टुकड़ों में करके रखें। कुछ ऐसे कूड़े जिन्हें पुनर्चक्रति किया जा सकता है अलग तरह के बैग में डाल देते हैं। अखबार, पुस्तकें आदि आप तय स्थान पर डाल कर आ सकते हैं। भारत की तरह उन्हें रद्दी में खरीदने कोई घर-घर नहीं आता।

जिस दिन कूड़ा उठाने का दिन होता है उसकी पूर्वसंध्या को कुछ कबाड़ी भी आते हैं जो आप द्वारा फेंके गए फर्नीचर, बेड, टूटी साइकिल आदि उठा ले जाते हैं जिन्हें ठीक करके फिर गरीबों को सस्ते में बेच देते हैं लेकिन वैसे कोई कबाड़ी उन्हें नहीं खरीदता। स्थान-स्थान पर पुराने कपड़े-जूते आदि डालने के लिए ड्राप बॉक्स बने हुए हैं जिनमें डाले गए सामान को स्वयंसेवी या चर्च के लोग उठा ले जाते हैं और गरीबों को दान कर देते हैं। जिन्हें कोई लेने वाला नहीं होता वे गरीब देशों को दे दिए जाते हैं। सफाई की सफाई और दान का दान। उसे वहाँ से लाकर उन गरीब देशों के तथाकथित स्वयंसेवी संस्थान रेहड़ी वालों को बेच देते हैं जिन्हें देश की राजधानी तक में देखा जा सकता है।

सर्दी की ऋतु से पहले पेड़ों के झड़े हुए पत्तों के कूड़े को आपको अपने घर के सामने स्वयं इकठ्ठा करके रखना होता है जिसे पाइप से वेकम द्वारा ट्रकों में इकठ्ठा करके खाद बनाने वाले स्थानों तक पहुंचा दिया जाता है। यदि कोई पेड़ गिर जाता है तो स्थानीय प्रशासन की ओर से उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बदलकर मल्च के रूप में बेच दिया जाता है। मल्च लकड़ी के छोटे-छोटे किए गए उन टुकड़ों को कहते हैं जिन्हें बर्फीले इलाकों में पेड़ों की जड़ों को बर्फ से बचाने के लिए तने के साथ चढ़ा दिया जाता है जैसे आलू के पौधे को मिट्टी चढ़ाते हैं।

योरप के देश वैसे भी अमरीका की अपेक्षा लोक-सेवाओं के मामले में, योरप से अमरीका गए लोगों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित थे। बाद में तो इन देशों के पास ज़मीन बहुत कम बची है, उपनिवेश समाप्त हो गए है अतः वे अपने कूड़े को बहुत समझदारी से निबटाते हैं जैसे सिंगापुर लेकिन अमरीका के पास बहुत ज़मीन है और जनसंख्या कम। इसलिए वह अपने कूड़े को ज़मीन के भराव में खपा देता है लेकिन ध्यान रहे ज़मीन सीमित है अतः किसी दिन इसके बहुत दूरगामी और दुखद परिणाम सामने आएँगे। यदि भारत भी इस तरीके को अपनाता है तो उसका तो सत्यानाश होते देर नहीं लगेगी। बंगलुरु जैसे शहर में कभी सड़कों पर जल भराव की समस्या नहीं होती थी लेकिन अब उसकी अधिकतर झीलों को कूड़े से भर दिया गया है जिसके कारण थोड़ी सी बरसात होते ही सड़कों पर पानी खड़ा हो जाता है।

अमरीका में आमिष-कूड़ा अर्थात बूचड़ खाने का कूड़ा बहुत समझदारी से निबटाया जाता है। कोशिश की जाती है कि हर चीज को काम में ले लिया जाए और सब कुछ कोई न कोई उत्पाद बनकर निकले। यहाँ तक कि सुअर की आँतों तक को चिप्स जैसी खाद्य सामग्री में बदल दिया जाता है जिसे बच्चे मुँह में रखकर चबाते रहते हैं। हमें व्यर्थ लगाने वाली चीजों को भी किसी न किसी खाद्य सामग्री में मिलाकर इस तरह से डिब्बा बंद कर दिया जाता है कि खाने वाले को पता ही न चले कि क्या खा रहा है।

भारत की परम्परागत जीवन शैली कूड़ा फ़ैलाने की नहीं थी और फिर उस समय इस तरह के कृत्रिम पदार्थों का जिद्दी कूड़ा हुआ भी नहीं करता था। क्या हम अपने यहाँ ऐसी विनाशकारी और जल-ज़मीन को निगलने वाली जन्नत चाहेंगे? गॉड की धरती को बचाते हुए सफाई रखी जाए, यही गॉड की सेवा भी है। ■

अपर्णा राय

मध्य प्रदेश में जन्म। बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल से स्नातक। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर से बिजनेस इकोनॉमिक्स में स्नातकोत्तर। हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर से मास कम्युनिकेशन में उपाधि। हिंदुस्तान टाइम्स, इनाडु टेलीविजन तथा आई क्वेस्ट में कार्यरत रहीं। समाजसेवी संस्था SAITEW की सदस्य। सर्जनात्मक लेखन में रुचि। सम्प्रति -शिकागो में निवास।

सम्पर्क - aparna5.rai@gmail.com

शिकागो की डायरी

ध्यान की बहुआयामी छटाएँ

ध्यान, योग, आध्यात्मिकता, इन सबके बारे में सुनना, देखना, पढ़ना, लगभग हर दूसरे तीसरे दिन हो जाता है, पर इसका व्यक्तिगत अनुभव करने का अभी तक मौका नहीं मिला था। लेकिन हाल ही में मेरे छोटे भाई-भाभी, जो वाशिंगटन डीसी में रहते हैं, ने अपनी सालभर की बेटी के साथ सहज योग का दो दिन का शिविर अटेंड किया तो मुझे इसके बारे में विस्तार से जानने का अवसर मिला।

इस शिविर का हिस्सा बनने के दौरान उन्होंने जिस तरह स्वयं में सकारात्मक ऊर्जा महसूस की, उनके लिये वह अलग ही तरह का अनुभव था। सरल शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा जाये तो वे इस अनुभव से रोमांचित थे और सालभर के अपने बच्चे में भी उन्हें योग के जरिये एकाग्रता प्रतिबिम्बित होती प्रतीत हुई।

प्रश्न उठना लाजिमी है कि जब छोटा-सा बच्चा योग शिविर का हिस्सा हो सकता है तो हम लोग रोजाना कुछ वक्त योग जैसी सनातन भारतीय परम्परा को अंगीकार करने के लिये क्यों नहीं निकाल सकते। आधुनिक जीवन शैली में अलग-अलग तरह की नयी चीज़ों ने अपने लिये जगह बनाकर हमारा जीवन जटिल बना दिया है। इसकी वजह से लोगों का बरताव सहजता से दूर होता जा रहा है। सभी तरक्की की दौड़ में अनेक लक्ष्यों को एक साथ पाने की कोशिश में अलग-अलग दिशाओं में दौड़ रहे हैं। जिसका परिणाम शारीरिक और मानसिक व्याधियों के तौर पर लोगों के समक्ष उपस्थित हो रहा है।

> *तरक्की की दौड़ में अनेक लक्ष्यों को एक साथ पाने की कोशिश में सभी अलग-अलग दिशाओं में भाग रहे हैं। परिणामस्वरूप शारीरिक-मानसिक व्याधियाँ हमारे समक्ष उपस्थित हो रही हैं।*

ऐसे समय में जब हमारे जीवन में इलेक्ट्रॉनिक्स की भारी भीड़ जुटती चली जा रही है, शारीरिक एवं मानसिक व्यायाम की अत्यंत आवश्यकता है। योग और ध्यान की भारतीय पद्धति इस आवश्यकता को पूरा करने में समक्ष हैं। ध्यान की इसी सोच आगे बढ़ाने के मकसद से शिकागो के नेपरविल्ले (Naperville) क्षेत्र में चल रहे हार्टफुलनेस संस्थान में जाकर

हार्टफुलनेस ऑर्गनाईजेशन में अनेकों प्रवासी भारतीय स्वयंसेवी के तौर पर अपनी कम्युनिटी के अलावा दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं। इसमें बिना किसी शुल्क के कोई भी व्यक्ति योग और ध्यान का अभ्यास कर सकता है।

देखने को मिला। यह संस्थान सहज़ मार्ग स्प्रिचुअलटी फाउंडेशन का ही एक हिस्सा है जो की ध्यान से व्यावहारिक समझ, तनाव प्रबंधन, आत्म विकास और आभार की शक्ति को सिखाता है। सहज़ मार्ग (प्राकृतिक पथ), राजयोग (योग ऑफ़ माइंड) का एक रूप है जो की हृदय केन्द्रित ध्यान प्रणाली है। सहज़ मार्ग में प्रमुख हैं- ध्यान, सफाई (क्लीनिंग) और प्रार्थना। और दूसरे शब्दों में सहज मार्ग है प्राकृतिक पथ या सरल तरीका, आध्यात्म में व्यावहारिक प्रशिक्षण की एक प्रणाली।

यह ध्यान पद्धति हजारों बरसों पहले भारत में पैदा हुई और अपनी सार्वभौमिक, धार्मिक या सांस्कृतिक पूर्वाग्रह से परे अब भी निरंतरता के साथ विद्यमान है। ध्यान एक निर्देशित तौर पर स्वयं प्रयास के माध्यम से लोगों को पूरी क्षमता विकसित करने के लिए एक साधन प्रदान करता है जिसका कोई भी व्यक्ति अभ्यास कर सकता है। ध्यान हमारी उतार-चढ़ाव से भरी रोजमर्रा की जिंदगी को संतुलित करता और इसका निरंतर अभ्यास हमें हमारे भीतर खुद के साथ एक गहरे और स्थायी संबंध महसूस करने के लिए अनुमति देता है और बदले में हमारे जीवन के लिए एक स्थायी दिशा और अर्थ देता है।

हार्टफुलनेस ऑर्गनाईजेशन का यही आधार है। इसमें अनेकों प्रवासी भारतीय स्वयंसेवी के तौर पर काम करते हुए अपनी कम्युनिटी के अलावा दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं। इस संस्था में बिना किसी शुल्क के कोई भी व्यक्ति योग और ध्यान का अभ्यास कर सकता है। आर्गेनाईजेशन अनेक तरह के वर्कशॉप, सेमिनार और तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित करता है। हाल ही में संस्थान ने नेचुरल लिविंग की एक सीरिज शुरू की है, जिसमें दिन की सक्रिय और ऊर्जा से भरी शुरूआत कैसे की जाये, इसे सिखाया जाता है। खान-पान के बरताव और तनाव प्रबंधन तथा आभार की शक्ति को भी यहां विस्तार से बताया जाता है।

सेंटर के आर्गेनाइजर संचालक राघवेंद्र से बात करने के बाद तो इन गतिविधियों में शामिल होने की हमारी इच्छा और बलवती हो गई है। राघवेंद्र ने बताया कि भावनात्मक और आध्यात्मिक समझ मानव विकास और सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसको ध्यान में रखकर ही पहला सत्र तैयार किया गया है। जिसमें बहुत से भारतीय शामिल हुए हैं। इसके अलावा दूसरे देशों के लोगों ने भी भागीदारी की है। दूसरी सीरीज मिंडफुल फ़ूड थी, जो कि इस बात पर आधारित थी कि कैसे खाना हमारे सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है। इस तरह के वर्कशॉप के साथ आर्गेनाईजेशन के नियमित तौर पर साप्ताहिक मासिक प्रोग्राम भी चलते हैं जिसमें बड़ी संख्या में लोग हिस्सा ले रहे हैं और लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं। ■

सपनों को साकार करने का मिशन जारी है

डॉ. दिनेश मोर
आशा मोर

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम साहब कहते थे कि नई सोच का दुस्साहस दिखाओ। हमने भी अपनी सोच को नयी दिशा दी है। हमारी आँखों में भी सुनहरे सपने तैरते हैं, जो एक न एक दिन ज़रूर ही साकार होंगे।

मेरा जन्म झाँसी में हुआ। कॉलेज की पढ़ाई के बाद मैंने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में काम किया। मेरे पति डॉ. दिनेश मोर ग्वालियर में पैदा हुए। उन्होंने गजरा राजा मेडिकल कॉलेज से मेडिकल की डिग्री हासिल की। अस्सी के दशक में दिनेश को रेडियोलॉजिस्ट के पद पर काम करने के लिये त्रिनिडाड से ऑफर आया। हमने सोचा कि चलो काम भी देख लेंगे और घूमना भी हो जायेगा। और इस तरह त्रिनिडाड की हमारी पहली यात्रा प्रारंभ हुई। यह पहली यात्रा दो साल के लिये थी, लेकिन भारत में खुद का क्लीनिक खोलने के लिये हमें अभी काफी पैसे की ज़रूरत थी, लिहाजा त्रिनिडाड में कुछ समय और काम करते रहने का हमने फैसला किया। वक्त गुजरता गया और बाद में लगा कि इंडिया वापस तो जा नहीं पा रहे हैं तो क्यों न यहीं हॉस्पिटल खोल लिया जाये।

एक करोड़ तीस लाख की आबादी वाला त्रिनिदाद विकसित राष्ट्र है और यहां की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में हम लोगों ने कुछ मित्रों के साथ मिलकर अपने हॉस्पिटल की शुरूआत की। जैसे ही हमारा यह सपना पूरा हुआ हम इसे संजाने-संवारने में दिन-रात जुट गये। आज हमारे हॉस्पिटल में ८० बेड हैं, जिसमें ओपन हार्ट सर्जरी, कैंसर विंग, न्यूरो सर्जरी, लंग्स सर्जरी जैसे विशेषज्ञ विंग सफलतापूर्वक संचालित हो रहे हैं। हॉस्पिटल में कैंसर की विशेष देखभाल विंग है, जिसमें चौबीसों घंटे केयर की जाती है। थैरेपीज, एमआरआई की सुविधाएँ उच्च गुणवत्ता की यहां मौजूद हैं।

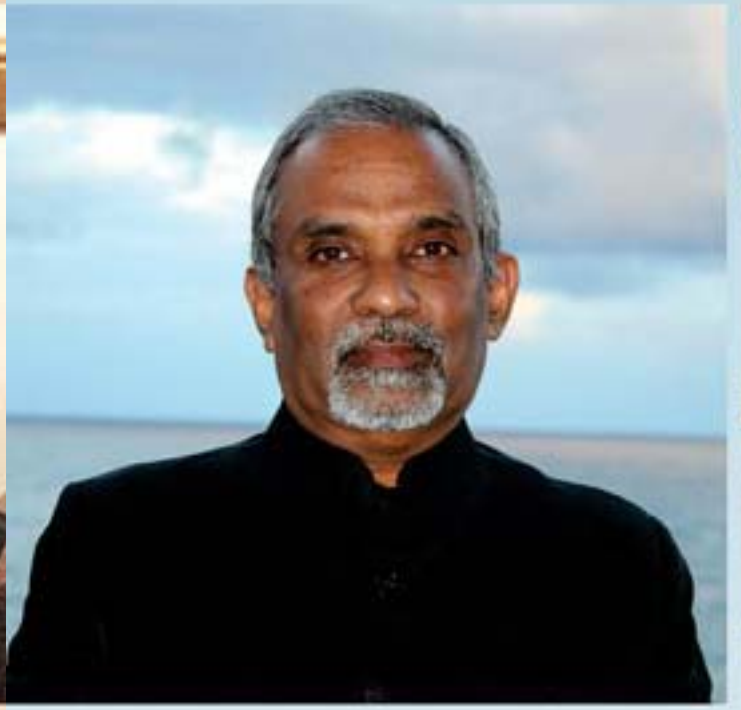

हमने इतने सालों में लगभग तीस नर्सिंग स्टॉफ, टेक्नीशियन और डॉक्टर्स को भारत से बुलाकर यहाँ काम दिया, उनमें से कुछ स्टॉफ ट्रेंड होने के बाद दूसरी जगहों पर चले गये हैं।

त्रिनिडाड की कुल आबादी में चालीस फीसदी अफ्रीकी मूल के, चालीस फीसदी भारतीय तथा बीस फीसदी सम्मिलित प्रजाति के लोग रहते हैं। सालों से मेहनत करते हुए हमें जद्दोजहद के साथ ही जुनूनी भी होना पड़ा है। त्रिनिडाड में १७० साल पहले भारतीय मूल के लोग आये थे। वे आज कहते हैं कि त्रिनिडाड हमारी मदरलैंड है तो इंडिया हमारी ग्रांड मदरलैंड है। इन भारतीय मूल के लोगों की मूल भाषा भोजपुरी धीरे-धीरे खत्म हो गई है और अब वे सिर्फ त्रिनिडाड सलांक के साथ अंग्रेजी बोलते हैं। त्रिनिडाड की अर्थव्यवस्था में इनकी उल्लेखनीय भागीदारी है। ये हर तरह की व्यापारिक गतिविधियों में भागीदारी रखते हैं। दूसरी तरफ हमारे जैसे नये प्रवासी भारतीय हैं जो कामकाज की तलाश में यहाँ पहुँचे, उनकी संख्या कम है।

हम लोगों को यहाँ तक पहुँचने में बहुत संघर्ष और ऊँचे सपने देखने पड़े। हालांकि हम अब भी भारत में अपना क्लीनिक खोलने का सपना संजोये हुए हैं। इसे पूरा करने के लिये पिछले साल हमने दिल्ली, भोपाल आदि शहरों में इसकी सम्भावना टटोली है, लेकिन कामयाबी हमसे कुछ दूर रह गयी। भारत के किसी बड़े शहर में सुपर स्पेसिलिटी हॉस्पिटल खोलने का अब भी हमारा महत्वाकांक्षी सपना है, जिसे साकार करने के लिये हम हरेक सम्भावना की ओर सकारात्मक नजरिये से प्रयासरत हैं।■

ध्रुव शुक्ल

११ मार्च १९५३ को सागर में जन्म। कवि-कथाकार के तौर पर पहचान। 'उसी शहर में', 'अमर टॉकीज' एवं 'कचरा बाज़ार' उपन्यास, 'खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं', 'फिर वह कविता वही कहानी', 'एक बूँद का बादल', 'हम ही हममें खेलें' कविता संग्रह, 'हिचकी' कहानी-संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रपति द्वारा कथा एवार्ड और कला परिषद् के रज़ा पुरस्कार से सम्मानित।

सम्पर्क : एम.आई.जी.-५४, कान्हा कुँज, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) ईमेल - kavi.dhruva@gmail.com

स्मरण

अवलोकी अज्ञेय

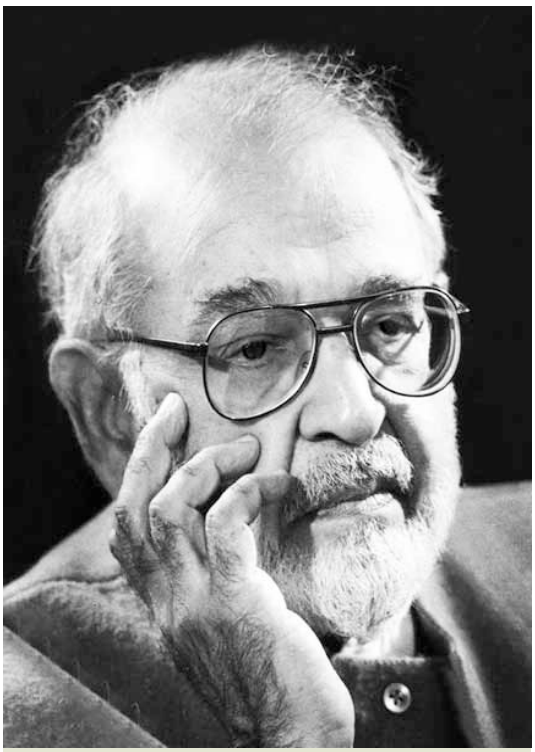

(अज्ञेय - जन्मदिवस ७ मार्च)

कवि अज्ञेय की एक कविता उद्धरित करता हूँ। इसे स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में दिल्ली की जेल में लिखा गया। यह उनकी प्रारंभिक गद्य कविताओं में शामिल है। कविता बयान के शिल्प में रची गयी है–

मैं अपने अपनेपन से मुक्त होकर, निरपेक्ष
भाव से जीवन का पर्यावलोकन कर रहा हूँ
एक विस्तृत जाल में एक चिड़िया फँसी हुई
छटपटा रही है। पास ही व्याध खड़ा उद्दण्ड
भाव से हँस रहा है।
चिड़िया को फँसी और छटपटाती देखकर
मुझे पीड़ा और समवेदना नहीं होती, मैं
स्वयं वह चिड़िया नहीं हूँ। न ही मुझे सन्तोष
और आह्लाद होता है– मैं व्याध नहीं हूँ। मुझे
किसी से भी सहानुभूति नहीं है। मैं तुम्हारी
माया के जाल को दूर से देखने वाला एक
दर्शक हूँ।
मैं अपने अपनेपन से मुक्त होकर, निरपेक्ष
भाव से अपने जीवन का पर्यावलोकन कर रहा हूँ।

यह कविता पढ़ते हुए आदिकवि वाल्मीकि का पुण्य स्मरण हो आना स्वाभाविक है– जब तमसा के किनारे एक चिड़िया के वध को देखकर कवि को शोक हुआ फिर शोक से श्लोक फूटा, फिर चरित रचने की प्रेरणा हुई। आदि कवि के जीवन में काव्य रचने की घटना मात्र 'जीवन के पर्यावलोकन' से तो नहीं घटी होगी। इस पर्यावलोकन में कवि की पीड़ा, समवेदना और सहानुभूति भी घुल-मिल गयी होगी। भले ही व्याध से न सही पर उस नर क्रौंच पक्षी से तो अवश्य ही, जिसका वध कवि की आँखों के सामने हुआ। पर अज्ञेय की इस कविता में वध नहीं है सिर्फ जाल में फँसी हुई छटपटाती चिड़िया है।

जीवन के मायाजाल को निरपेक्ष भाव से वाल्मीकि और व्यास आदि कवियों ने भी देखा है। पर 'दर्शक' होकर नहीं, दृष्टा होकर देखा है। दर्शक होकर देखने में तुम और मैं का भेद बना ही रहता है। जैसे कि कवि अज्ञेय की इस कविता में 'तुम्हारी माया' और 'मैं' के बीच बना हुआ है। दरअसल कवि अज्ञेय मैं को बचाकर अपने अपनेपन से मुक्त होने की अभिलाषा में डूबे हैं। जो उनके मैं को दूर से देखने वाले दर्शक की अधिमान्यता प्रदान कर सके। अज्ञेय की यह काव्यदृष्टि अपने को अपनी ही शरण में नहीं ले जाती। वह तो अपने को अपने से ही स्वतंत्र होने की माँग कर रही है। अज्ञेय इसी स्वतंत्रता के काव्य अभिलाषी कवि जान पड़ते हैं। उनकी समूची काव्य सर्जना पर यही अभिलाषा छायी हुई है।

तत्वतः कितना भी जाना जाये, अन्ततः एक अभिलषित माया ही हाथ आ जाती है। कवि कितनी भी दूरी से देखे, उसे अपनेपन से मुक्ति नहीं मिलती। यह कविता शुरू होती है 'जीवन के पर्यावलोकन' से और समाप्त होती है 'अपने जीवन के पर्यावलोकन' पर। कवि अज्ञेय उस अवलोकी भाव से भरे हुए-से जान पड़ते हैं जिसमें डूबकर यह जिज्ञासा धूमिल-सी होती जाती है कि– तुम हो कि नहीं। बल्कि यह व्याकुलता ही बढ़ती जाती है कि– मैं हूँ कि नहीं। क्योंकि मेरे होने से ही सब देखा जाता है, सुना जाता है और मेरे होने से ही शब्द भी दिए जा सकते हैं। इस नाम-रूपों से भरे जगत में अज्ञेय को शायद वह शब्द नहीं चाहिए जिससे सब कुछ प्रकट हुआ माना जाता है। उन्हें तो वह सार रूप अर्थ चाहिए

> हमारे समय में निर्निमेष आँखें पाना कितना कठिन है। हम अपनी पीड़ाओं के क्षणिक आलोक में कितने समयों के अर्थभार से दबी हुई भाषा का सामना करते हैं। जहाँ देखने, पहचानने और नाम देने में 'आजीवन जलते-तपते' रह जाने के अलावा कवि को और मिलता ही क्या है।

जिससे सारे शब्द लिपटे हुए हैं। कवि अज्ञेय की यायावरी उन्हें इस सार रूप अर्थ की खोज में वन-पर्वत, नदी-सरोवर और सागर के किनारों तक ले गयी। प्रकृति की अँगनाई में ही वाक् और अर्थ की सम्पृक्ति का रहस्य खुलता है।

हमारे समय में निर्निमेष आँखें पाना कितना कठिन है। हम अपनी पीड़ाओं के क्षणिक आलोक में कितने समयों के अर्थभार से दबी हुई भाषा का सामना करते हैं। जहाँ देखने, पहचानने और नाम देने में 'आजीवन जलते-तपते' रह जाने के अलावा कवि को और मिलता ही क्या है। अज्ञेय की कविताओं में इस निराशा की छाया दिखायी पड़ती है। विद्यापति की वाणी में कहें तो– 'माधव हम परिणाम निरासा।'

अपने होने से हम क्या हों, इस विकल्प की तलाश अज्ञेय को है। कृतिकारों के अनुयायी होने का भाव उनमें नहीं है। वे पहले की काव्य सरिताओं के सेतुओं पर नहीं चलना चाहते। वे तो अपने समय की नदी के किनारे मौन व्यथा के तम में अपने 'काव्य मुक्ता रूप' को पकते हुए देखना चाहते हैं। अज्ञेय अपने समय में परम-अर्थ का नहीं स्व-अर्थ का काव्य विकल्प खोजने वाले कवि हैं। वे जड़ीभूत सौन्दर्य और सत्याभिरुचि से बाहर आने की चाह में कविता रचते हैं। अज्ञेय अस्ति और नास्ति के प्रश्नों का सामना उस तरह नहीं करते, जिस तरह उन्हें सुलझाने की परम्परा कवि निराला तक चली आयी है। अज्ञेय की काव्याकांक्षा अपनी परिचिति को गहरे उकेरने भर में है। चाहे फिर 'भाषा की झिल्ली' ही क्यों न फट जाये, 'संवेदन का प्याला' भी क्यों न टूट जाये। उन्होंने अपनी इस बेकली को अपनी एक कविता– 'हम कृती नहीं है'– में प्रकट किया है।

सब समयों के कवि अपनी होनी को ही कहते हैं। कवि अज्ञेय बीसवीं सदी में अपने अवलोकी भाव से अपनी कविता में अपनी होनी को ही कहते रहे। अज्ञेय की काव्य नदी सुमंगल मूला नहीं है और ना ही वेदमत और लोकमत के मंजुलकूल वहाँ शेष रह गये हैं। बीसवीं सदी में कवि के पास 'अज्ञेय' को जानने के लिए 'उत्कण्ठा की ओक' भर है। हमारे समय की कविता प्रपा के सामने खड़े अतृप्त कवि की प्यास जैसी है। अज्ञेय इसी प्यास के कवि हैं।

ऊपर उद्धरित कविता को एक और भाव से भी पढ़ने का मन होता है। अज्ञेय कवि और सेनानी एक साथ हैं। पर वे कवि होने के कारण जाल में छटपटाती चिड़िया को गुलामी से और उद्दण्ड व्याध को फिरंगियों से जोड़कर नहीं देखते। यह तो उनके अपनेपन की चिड़िया है जो जाल में फँसी हुई है और छटपटा रही है। वे कवि और सेनानी के मैं को स्व-अर्थ की चाह में अलग-अलग ही रखते हैं।

एक और चिड़िया है, जो न जाल में फँसी है और न जेल में है। वह तो जेल के बाहर अंधकार को वेधती हुई 'मधुर विद्रोह बीज' बोने के लिए बंदी कवि को उकसा रही है। कवि को लगता है कि वह चिड़िया जेल की दीवार चीरकर अपने स्वर को आजमाने के लिए वहाँ आयी है। वह स्वर कवि के संवेदन के प्याले को तोड़ नहीं रहा बल्कि उसे और गहरी सहानुभूति से भर रहा है।

'एक भारतीय आत्मा'– माखनलाल चतुर्वेदी की इस 'कैदी और कोकिला' कविता को जेल की कोठरी में रहते हुए कवि अज्ञेय ने अपनी कॉपी में उतार लिया था। उन्होंने अपने 'स्मृति लेखा' में इसका ज़िक्र किया है। अज्ञेय एक सेनानी के रूप में अनुभव करते हैं कि बार-बार इस कविता का पाठ करने पर– 'कोकिल के साथ एक अवचेतन एकात्मा का बोध, क्योंकि उन दिनों हम सभी बन्दी क्या अपने को चुपचाप मधुर विद्रोह बीज बोने वाले नहीं मानते थे!' पर कवि अज्ञेय अपनी कविता में इस रसानुभूति से अपने को दूर ही पाते हैं। हमारे समय के प्रामाणिक कवि का इस अनुभूति से दूर होना यह दर्शाता है कि व्यापक जीवन भी इस अनुभूति से दूर चला गया है। आखिर हमारे समय का कवि हमारी पीड़ा, समवेदन और सह-अनुभूति का ही तो प्रतिनिधि है।

अज्ञेय की कविताएँ पढ़ते हुए लगता है कि न तो उपमान मैले होते हैं और न ही देवता प्रतीकों से कूच कर जाते हैं। यह बात अज्ञेय द्वारा गढ़े गये 'नये प्रतीकों' से भी सिद्ध होती है। प्रायः सारे 'नये प्रतीक' पहले के उपमानों और प्रतीकों की छाया में ही गढ़े गये हैं– फिर वही 'धुन्ध से ढँकी हुई वापिका' है और वही सनातन 'लघु अज्जुरी' है।

न जाने क्यों लगता है कि अज्ञेय हमारे समय में तो हैं पर हमारे साथ नहीं हैं। उनके और मेरे बीच एक श्रद्धापूर्ण दूरी है जो समझते तो बनती है पर बखानी नहीं जाती। उनकी रचनाओं के निकट जाकर जब भी उन्हें देखा तो लगा कि वे अपने होने को अपने अवलोकी भाव से इस तरह देख रहे हैं, जैसे उनके सामने सभी हैं, सिर्फ वे नहीं हैं। अज्ञेय की एक कविता के भाव के सहारे कहें तो– घर में एकान्त नहीं, उस एकान्त में घर हो, जिसमें सब आ सकें, सब उस एकान्त को छू सकें। मैं उसे छू भी न सकूँ। मुझे ही जो छुए, घेरे और समो ले। माया जाल को दूर से देखने की प्रारंभिक राहें शायद कुछ ऐसी ही तटस्थता से निकलती होंगी। अज्ञेय 'राहों के अन्वेषी' तो हैं ही, उनकी अधिकांश कविताएँ तटों पर ही रची गयी है। प्रारंभ से ही अज्ञेय एक पर्यावलोकी कवि हैं और वे अपनी सारी कविताएँ पर्यालोचन के शिल्प में रचकर ही हमें दे गये हैं।■

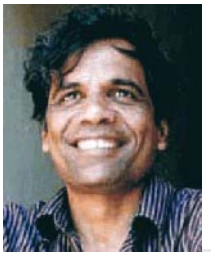

उदयन वाजपेयी

जन्म १९६० सागर, मध्यप्रदेश। चर्चित कवि-कहानीकार। कहानी संग्रह- सुदेशना, दूर देश की गन्ध, कविता संग्रह- कुछ वाक्य, पागल गणितज्ञ की कविताएँ, एक निबन्ध संग्रह, फिल्मकार मणिकौल के साथ उनके सम्वाद की पुस्तक 'अभेद आकाश' प्रकाशित। कृतियों का तमिल, बंगाली, मराठी, फ्राँसीसी, पोलिश, बुल्गारियायी, स्वीडिश, अँग्रेजी आदि में अनुवाद। कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप और रज़ा फाउण्डेशन पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क : एफ-९०/४५, तुलसीनगर, भोपाल-४६२००३ ई-मेल : udayanvajpeyi@gmail.com

नजरिया

बिना सम्मान समता का मूल्य नहीं

हमारा यह समय अन्याय चीजों के लिए जाना जायेगा। मसलन बाजार के घर के कोनों तक में घुस आने के लिए, बुद्धि के तिरस्कार के लिए पुस्तकों की अवमानना के लिये, बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के स्थापित होने के लिए, परम्परा के अवमूल्यन के लिए आदि-आदि। इन सब पर अलग से बहुत कुछ लिखा गया है और समय रहते बहुत कुछ लिखा जाता रहेगा। पर इनके अलावा मुझे हमारा समय कृतघ्नता के लिए विशेष जान पड़ता है। मेरी समझ में भारत के इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया जब हम एक-दूसरे के कर्म के प्रति इतने अधिक कृतघ्न हुए हैं। संस्कृत और हिन्दी में कृतघ्न का उल्टा कृतज्ञ होता है। यह बहुत ही सुंदर शब्द है। अगर आपस में इसे तोड़ें, आपके हाथ 'कृत' और 'ज्ञ' लगेंगे। 'कृत' का आशय कर्म से है और 'ज्ञ' का जानने से। जब आप किसी के कर्म के अर्थ को जानने लगते हैं, आप उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब हम किसी के भी कर्म को समझने लगते हैं, हम उसके प्रति सम्मान से भर जाते हैं। इसे ही कृतज्ञता कहा जाता है। कृतघ्नता इसका ठीक उल्टा है। इसलिए इसका यह अर्थ हुआ कि जब हम किसी के कर्म को ठीक से समझ नहीं पाते, हम उसके प्रति सम्मान नहीं जुटा पाते। उसकी और उसके कर्म की अवमानना करते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था की जो जिम्मेदारी थी, वह उसने नहीं निभायी। किसी भी संस्कृति में शिक्षा व्यवस्था का यह दायित्व होता है कि वह उस संस्कृति के सदस्यों में अपने समाज में होने वाले अन्यान्य कर्मों के प्रति जिज्ञासा और समझ उत्पन्न करे। उदाहरण के लिए जब कोई छात्र संगीत की शिक्षा ग्रहण करता है, वह संगीतकार हो पाये या न हो पाये पर अगर उसे अच्छा शिक्षक मिला है और वह एक बेहतर शिक्षा व्यवस्था का अंग रहा है तो वह अपने चारों ओर व्यवहृत होते संगीत के प्रति कृतज्ञता महसूस करेगा और इस तरह वह सहज ही उस संगीत को उत्पन्न करने वाले संगीतकारों का भी पर्याप्त सम्मान कर सकेगा। इसके उलट अगर उसे इस तरह शिक्षा दी जाती है कि वह संगीत के प्रति कृतज्ञता अनुभव न कर पाये, तो निश्चय ही वह अपने जीवन में आने वाले लगभग सभी संगीतकारों का उपहास करेगा। ऐसा ही कुछ वनस्पति शास्त्र के छात्र के साथ भी होगा। जिस छात्र ने वनस्पति शास्त्र को गहराई से समझा है, वह अपने चारों ओर फैली वनस्पतियों में प्रकृति की अद्वितीय सक्रियता को किसी हद तक समझकर उसके प्रति नतमस्तक होगा। अगर उसकी शिक्षा उसे इस योग्य नहीं बना पाती, उसका वनस्पति शास्त्र पढ़ना निष्फल हो जाता है। उपभोगतावादी संस्कृति में अपने चारों ओर से हो रहे मानवीय और गैर मानवीय कर्मों को समझने के स्थान पर उनका उपयोगभर कर लेने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। हम कोई सुंदर उपन्यास पढ़कर उसके लेखक के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने के स्थान पर उस उपन्यास से कुछ वाक्यों को चुराकर अपने किसी काम में लाने का प्रयास करते रहते हैं। संभवतः यह इसलिए है कि किसी भी कर्म को समझने के लिए जिस धीरज की आवश्यकता होती है वह हमारे समय में उपलब्ध नहीं है। हम

> *हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जो बिना किसी कारण भागा चला जा रहा है।*

> *१९वीं शताब्दी के बाद से भारत में विभिन्न सम्प्रदायों का एक-दूसरे के प्रति असहिष्णु होने का मुख्य कारण एक-दूसरे के कर्म के प्रति कृतज्ञ न हो पाना है। यही कारण है कि विभिन्न सम्प्रदाय अपनी आंतरिक शिक्षा व्यवस्थाओं के खंडित हो जाने के कारण एक-दूसरे के कर्म की विशिष्टता को समझने के योग्य नहीं बचे।*

एक ऐसे युग में जी रहे हैं जो बिना किसी कारण भाग चला जा रहा है। यह भागमभाग लोगों का चुनाव नहीं है। हमें ऐसी परिस्थितियों में ढकेल दिया गया है कि हम रुककर कुछ समझने का प्रयास करने के स्थान पर भागते चले जाने में लगे रहते हैं।

कृतज्ञता एक ऐसा मानवीय मूल्य है जिसके सहारे समाज के विभिन्न सम्प्रदाय आपस में जुड़े रहते हैं। मैं एक उदाहरण देता हूँ। अगर मैं किसी बढ़ई के काम को अच्छी तरह समझकर उसके प्रति कृतज्ञ महसूस करता हूँ, वह बढ़ई इस भावना से अपने भीतर न सिर्फ ऊर्जा महसूस करेगा बल्कि उसमें अपने कर्म के प्रति आत्म सजगता बढ़ेगी और वह आगे चलकर और बेहतर कार्य करने का प्रयास करेगा। यही कुछ किसी लेखक के साथ भी होगा। अगर एक पाठक किसी उपन्यास या कविता को डूबकर पढ़ेगा और फिर उसे गहरायी से समझेगा, वह सहज ही उसके लेखक या कवि के प्रति गहरी कृतज्ञता के बोध से भर जायेगा। पाठक की यह कृतज्ञता कवि या लेखक को आगे काम करने की ऊर्जा प्रदान करेगी और इससे संस्कृति को समृद्धि प्राप्त होगी। मैं समझता हूं कि कृतज्ञता का यही बोध हर घर में होना चाहिए और इसी के सहारे घरों में समृद्धि और सुख आता है। अगर घर के बड़े बुजुर्ग घर के युवाओं के कर्मों के प्रति सम्मान से भरे होते हैं और अगर घर के युवा घर के बुजुर्गों के प्रति, घर का वातावरण ही बदल जाता है। यह तभी हो सकता है जब घर के विभिन्न सदस्य एक-दूसरे के कर्मों को छोटा करने के स्थान पर उन्हें समझने की और फिर समझ के आधार पर एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञ होने की कोशिश करें।

आज तक कोई भी मानवीय समुदाय सिर्फ शक्ति के आधार पर जुड़ा नहीं रह सका है। अगर वह जुड़ा रहा है तो इसके पीछे उस मानव समुदाय के विभिन्न सदस्यों के एक-दूसरे को समझने के प्रयत्नों की प्रमुख भूमिका रही है। हम एक-दूसरे को समझकर ही, एक-दूसरे के कृत्यों को समझकर ही उनके प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं और तभी हमारे मन में एक-दूसरे के प्रति वह सम्मान उत्पन्न हो सकता है जिसके आधार पर हम एक-दूसरे से जुड़े रह सकते हैं।

मैं यह मानता हूं कि १९वीं शताब्दी के बाद से भारत में विभिन्न सम्प्रदायों का (जिन्हें जातियों के नाम से भी जाना जाता है) एक-दूसरे के प्रति असहिष्णु होने का मुख्य कारण एक-दूसरे के कर्म के प्रति कृतज्ञ न हो पाना है। यही कारण है कि विभिन्न सम्प्रदाय अपनी आंतरिक शिक्षा व्यवस्थाओं के खंडित हो जाने के कारण एक-दूसरे के कर्म की विशिष्टता को समझने के योग्य नहीं बचे। या कम से कम उनमें यह योग्यता धीरे-धीरे कम होती चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में रहने वाले हजारों सम्प्रदाय एक-दूसरे के कृतज्ञता के बंधन में बंधे नहीं रहे। हमारे पाठक शायद यह जानते हों कि हाल के कुछ अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज भी भारत में चार हजार से कुछ कम सम्प्रदाय रह रहे हैं। हमारा यह देश इतनी बड़ी संख्या में सम्प्रदायों में शताब्दियों से रहता चला आ रहा है और अगर वे सारे सम्प्रदाय एक-दूसरे के साथ कई बार घोर असहमति के बाद भी साथ-साथ रहते चले आ रहे हैं, तो इसका कारण इनका एक-दूसरे के प्रति गहरा कृतज्ञता बोध है। औपनिवेशिक शिक्षा-दीक्षा और स्वतंत्र भारत में विचारहीन शिक्षा व्यवस्था के चलते इस देश के अधिकतर नागरिक इस स्थिति में ही नहीं बचे कि वे अपने ही देश की विभिन्न कारीगरियों, विभिन्न कौशलों को किसी हद तक समझ सकते। हमारे अधिसंख्य नागरिकों के लिए स्वयं हमारे देश की कारीगरियां और कौशल धीरे-धीरे समझ की वस्तु नहीं रहीं। वे हमारी समझ के दायरे से बाहर निकल गयी हैं। इसीलिए आज हममें से अधिकांश स्वयं हमारे देश में शताब्दियों से होने वाली तमाम कारीगरी को न समझ पाते हैं और न उसके प्रति कृतज्ञ हो पाते हैं और इसीलिए हम उन्हें करने वाली तमाम कारीगरों के प्रति भी सहज सम्मान का अनुभव नहीं कर पाते। हम अपने देश में लोकतंत्र अवश्य ले आए हैं और इस कारण कम से कम औपचारिक रूप से सभी नागरिक समतापूर्वक जीवन बिताने का अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। यह याद रहे कि यह सिर्फ औपचारिक रूप से ही हुआ है, व्यवहारिक रूप से होने में इसमें कई और दशक लगेंगे। पर इस औपचारिक समता के बाद भी देश में विभिन्न सम्प्रदायों (जातियों आदि) में परस्पर कृतज्ञता-बोध खत्म होता गया है। बिना कृतज्ञता-बोध के हासिल की गयी समता, निष्प्राण समता होती है। यही हमारे आधुनिक समाज का सच बन गया है।

कृतघ्नों की भीड़ कितना ही समता-समता चिल्लाती रहे, कितना ही लोकतंत्र-लोकतंत्र चीखती रहे, इससे न सच्चा लोकतंत्र स्थापित हो सकता है और न सच्ची समता। इन दोनों के लिए भी समाज के विभिन्न सदस्यों को एक-दूसरे के कृत्यों को गहराई से समझकर उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करना आवश्यक है। ■

लाल्टू

१० दिसंबर १९५७ को जन्म। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.एस.सी. (रसायन में ऑनर्स), आई.आई.टी. कानपुर से रसायन में एम.एस.सी. तथा प्रिंस्टन विश्वविद्यालय, अमेरिका से रसायन शास्त्र में पी.एच.डी.। छह कविता और एक कहानी संग्रह प्रकाशित। हावर्ड ज़िन की पुस्तक A People's History of the United States के दस अध्यायों का अनुवाद। जोसेफ कोनरॉड के उपन्यास Heart of Darkness का अनुवाद प्रकाशित। सैद्धांतिक रसायन (आणविक भौतिकी) में ५० से अधिक शोधपत्र अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित। समसामयिक विषयों पर आलेख, पुस्तक समीक्षाएँ तथा बांग्ला, पंजाबी, अंग्रेजी से कहानियाँ, कविताएं अनूदित एवं प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित। ब्लॉग 'आइए हाथ उठाएँ हम भी' (laltu.blogspot.com) संचालित।

सम्पर्क : laltu10@gmail.com

समसामयिक

जेएनयू में क्या हुआ?

इंसान धरती पर तरक्की के उरूज पर पहुँच गया है। अधिकतर ग़रीब लोगों की आबादी के भारत जैसे मुल्क ने चाँद और मंगल ग्रह तक महाकाशयान पहुँचाएँ हैं। पिछली सदियों की तुलना में सारी दुनिया में लोकतांत्रिक ताकतें मौजूद हुई हैं। यह सब इंसानी काबिलियत, लियाकत और मेहनत से संभव हुआ है। तरक्की का चक्का औसतन आगे की ओर ही बढ़ता रहा है, पर कभी-कभार जैसे झटकों में वह पीछे की ओर मुड़ता है। हाल में जेएनयू परिसर में हुई और बाद में दिल्ली शहर में इसीसे जुड़ी और घटनाएँ उन झटकों का हिस्सा हैं जो भारत में पिछले कुछ सालों से लगते रहे हैं। खास तौर से पिछले दो सालों में ये झटके खौफनाक ढंग से बढ़ते जा रहे हैं। जेएनयू में बेवकूफाना ढंग से छात्रनेता की गिरफ्तारी और बाद में पटियाला हाउस अदालत में हुई हिंसा की घटनाओं से हमें अचरज नहीं होना चाहिए। ये एक लंबे सिलसिले की कड़ियाँ हैं, जो हिंदुस्तान की आवाम को नवउदारवादी आर्थिक ढाँचों के शिकंजे में क़ैद रखने के लिए न जाने कब से चल रहा है।

जिन्हें देश, देशभक्ति आदि के बारे में बातें करनी हैं, यह लेख उनके लिए नहीं है, क्योंकि उन्हें पता भी नहीं है कि कैसे उन्हें बड़ी राजनैतिक ताकतों ने इन शब्दों का इस्तेमाल करते हुए मानसिक रूप से गुलाम बना रखा है। पिछले कई सालों से देशी और विदेशी सरमाएदारों की मदद से सत्तालोलुप कुछ लोगों ने लगातार गुंडा संस्कृति को बढ़ाना शुरू किया है। यह कहना ग़लत होगा कि गुंडा संस्कृति किसी खास राजनैतिक प्रवृत्ति में ही दिखती है। वाम-दक्षिण हर तरह की राजनीति ने समय-समय पर गुंडा संस्कृति को बढ़ाया है। पर जैसा माहौल आज देशभर में फैल रहा है, ऐसा शायद पहले कभी नहीं हुआ। इसके पीछे जो सहज समझ है, वह यह है कि ज्यादातर लोग वैसे ही बौद्धिक रूप से विपन्न हैं; थोड़ी बहुत जो कुदरती क्षमता सोचने समझने की है भी, वह भी ग़रीबी, बेरोज़गारी की मार से कुंद हुई पड़ी है, इसलिए लोगों को हिंसा के रास्ते पर धकेलो। लोगों को यह एहसास दिलाया जाए कि वे अपनी गली के कुत्ते जैसे शेर हो सकते हैं। सत्तासीन ताकतें सरकार के प्रशासन-तंत्र और सरमाएदारों की मदद से खरीदे मीडिया का इस्तेमाल कर देश भर में उन गलियों को बना रही हैं, जहाँ मरियल कुत्ते भी शेर बन कर दहाड़ें। सचमुच यह बात इक्कीसवीं सदी की दुनिया में किसी को समझ न आती हो कि हर किसी को अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने का हक है, ऐसा नहीं है। हाँ, कुछ लोग ज़रूर होंगे, जो मानसिक रूप से वाकई विक्षिप्त हैं और बेशक ऐसे लोग सत्तासीन दल और उनके कुख्यात परिवार में हैं भी, पर देश भर में इस बात को लोगों के सामने रखने की हिमाकत कर पाना कि सज़ा-ए-मौत के फरमान से असहमत लोग गद्दार होंगे ही, इसकी वजह कोई गहरी वैचारिक समझ नहीं, यह महज एक राजनैतिक दाँव है। ऐसा दाँव इसी हिसाब के साथ चला गया है कि ग़रीबों को हिंसा की ओर धकेलना आसान होगा, क्योंकि ज़ुल्मों की इंतहा सहते हुए वे इतने अधमरे हो चुके हैं कि उनके पास कोई विवेक नहीं बचा है। यानी कि देश के बहुसंख्यक लोगों को उल्लू बनाकर हिंसा और खौफ़ की संस्कृति का माहौल बनाते चलो, यह हिंदुत्ववादियों का पहला एजेण्डा बन चुका है।

वैसे तो सिलसिला लंबा है, पर फौरी हालात क्या थे? हैदराबाद विश्वविद्यालय में केंद्रीय मंत्रियों के इस आक्षेप पर कि राष्ट्रविरोधी गतिविधियाँ हो रही हैं, प्रशासन ने दलित छात्रों का सामाजिक बहिष्कार का फरमान जारी किया। इनमें से एक छात्र रोहित वेमुला ने खुदकुशी की। इसे अधिकतर छात्रों ने संस्थानिक हत्या कहा और पहले से चल रहे बड़े छात्र आंदोलनों में एक और आंदोलन जुड़ गया। इस आंदोलन में देश भर के तरक्कीपसंद राजनैतिक सांस्कृतिक कार्यकर्ता जुड़ गए। इस आंदोलन की ओर से २३ फरवरी को 'दिल्ली चलो' का नारा दिया गया। चूँकि यह आंदोलन वाम और दलित राजनैतिक ताकतों की एकजुटता का अद्‌भुत मिसाल बन गया और इससे आने वाले राज्यों के चुनावों में दलितों के मत खो देने का आतंक सत्ताधारी दल के सामने मँडराने लगा, इस गफलत से निकलने की कोई रणनीति इस 'परिवार' को चाहिए थी। इससे निपटने का एक तरीका यह था कि वामपंथी छात्रों को ऐसे किसी जगह फँसा दो कि दलितों को लगे कि उनको पीछे धकेल दिया गया है। और यह मौका भी आसानी से मिल गया जब अफज़ल गुरु की फाँसी की बरसी पर कुछ काश्मीरी छात्रों ने काश्मीर की आज़ादी के लिए नारे लगाए। छात्र संघ के नेता को गिरफ्तार करो और उसके बाद तो सारा वाम इस तरफ लड़ता

रहे। यह बात कुछ हद तक सफल हुई होगी, पर पूरी तरह से नहीं हो पाई है। हैदराबाद में लड़ रहे छात्रों ने जेएनयू के छात्रों साथ एकजुटता दिखलाई है। और शुरुआत में मीडिया में कुछ लोगों ने जो उछल-कूद मचाकर लोगों को उल्लू बनाने की कोशिश की थी, उसका भी असर जल्दी ही खत्म हो गया है। बाक़ी कुछ बचा है तो सिर्फ यही कि लोग पूछने लगे हैं कि यह सरकार और उनके गुंडे कितनी दूर तक जाएँगे और ये क्यों हमें बेवकूफ मानकर चल रहे हैं। जनता बेवकूफ नहीं है, वह पिटी हुई है, ग़रीब है, लाचार और सताई हुई है, पर वह इतनी भी गई-गुजरी नहीं है कि इन मदारियों के खेलों में हमेशा ही उलझी रह जाए।

सबसे बड़ी बात यह कि लोग पूछने लगे हैं कि क्या काश्मीर के लोगों के लिए आज़ादी का हक माँगना गैरवाजिब है? अफज़ल गुरु और याकूब मेमन की फाँसी पर सवाल उठाने वालों में देश के सबसे नामी कानूनविदों की बड़ी संख्या है, जिनमें से कई देश के उच्चतम न्यायालय में वकालत करते हैं। क्या भारत सरकार के बहुत बड़े अफसर रहे पी.एन. हक्सर (इंदिरा गाँधी के पाँच साल तक सलाहकार रहे) की वकील और मानव-अधिकार कार्यकर्ता बेटी नंदिता हक्सर, भाजपा के पहले रूप जनसंघ के अपने केंद्रीय कानून मंत्री रहे शांतिभूषण के बेटे सुप्रीम कोर्ट के वकील प्रशांत भूषण, सुप्रीम कोर्ट के ही दूसरे वकील कामिनी जायसवाल, सुशील कुमार और कई नामी गरामी वकीलों और कानूनविदों के साथ एक स्वर में अफज़ल गुरु की फाँसी पर सवाल उठाना देशद्रोह है? क्या देश के तमाम बुद्धिजीवियों के साथ यह पूछना कि याकूब मेनन को मौत की सज़ा देना कितना वाजिब था, ग़लत है? क्या किसी का अपने मन पसंद का आहार खाना उसके देश के खिलाफ जाता है? जनता कभी तो पूछेगी ही कि हमें मरियल कुत्तों से बदतर रखने वालो, तुम किस देशभक्ति की बात कर हमसे अपनी गुंडा-संस्कृति का समर्थन माँग रहे हो। इसलिए इस पूरे कांड में हुआ यही है कि दलित-वाम एकजुटता और मजबूत हुई है। जय भीम और लाल-नील सलाम के नारे देश भर में लगने लगे हैं।

देशभक्ति के बारे में सौ साल से भी पहले अमेरिकी चिंतक और राजनैतिक कार्यकर्ता एमा गोल्डमैन ने पूछा था, 'देशभक्ति क्या है? क्या यह उस ज़मीन के लिए है, जहाँ हमने जन्म लिया, हमारे बचपन की यादों और उम्मीदों, सपनों और ख़्वाहिशों के लिए प्यार है? क्या देश वह जगह है जहाँ बच्चों सी सरलता लिए हम बादलों को निहारते हैं और सोचते हैं कि हम भी उनकी तरह इतनी तेजी से तैर क्यों नहीं पाते, नन्हे दिलों को गहराई तक भेदती वह जगह जहाँ हम ख़ौफ़ से करोड़ों टिमटिमाते तारों को गिनते हैं, कि कहीं हर आँख उनमें से किसी एक में खो न जाए? क्या वह ऐसी जगह है जहाँ हम चिड़ियों की आवाज़ सुनें और हममें उन्हीं की तरह उड़ने के लिए पंख पाने की तमन्नाएँ जाग उठें? या कि वह ऐसी जगह है जहाँ हम महान आविष्कारों और कारनामों की कहानियाँ सुनते मुग्ध होकर अपनी माँओं के घुटनों पर बैठें? संक्षेप में क्या यह उस जगह के लिए प्यार है, जिसका हर जर्रा हमें खुशियों भरा खेलता बचपन याद दिलाता है?' जाहिर है, और इस बात को एमा गोल्डमैन ने अपने उस प्रख्यात भाषण में समझाया था कि राजसत्ताएँ हमें जिस देशभक्ति में यकीन करने को कहती हैं, वह कुछ अलग ही है। वह हमें अपने कुदरती इंसानियत से दूर ले जाती है और हमें महज हिंसक जानवर बना देती है। इसीलिए तो पिछली सदी के सबसे बड़े वैज्ञानिक ऐल्बर्ट आइंस्टाइन ने कहा था कि 'मैं हर तरह के राष्ट्रवाद के खिलाफ हूँ, चाहे वह देशभक्ति का चोंगा पहनकर सामने आए'; हमारे अपने कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था, 'राष्ट्रवाद एक भयंकर बीमारी है। एक लंबे अरसे से यह भारत की समस्याओं का मूल बना हुआ है।' खास तौर पर, जैसी देशभक्ति आज थोपी जा रही है, उसमें भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक विविधता को एकांगी मनुवादी ढाँचे में समाहित करने का आग्रह ही नहीं, हिंसा पूर्ण आग्रह है। भक्तों की मुसीबत यह है कि पहले तो ऐसी पिछड़ी सोच को सीधे-सीधे कह बैठते थे, गाँधी की भी हत्या कर दी, पर अब जमाना बदल चुका है। अब थोड़ा सा ही पढ़-लिख कर लोग जान जाते हैं कि सौ साल पहले जैसा साम्राज्यवाद नहीं चलने वाला। अब ताकतवर मुल्क वे हैं जहाँ नागरिकों को तालीम, सेहत आदि बुनियादी सुविधाएँ हासिल हैं। क्षेत्रफल के पैमाने में बड़े होने से ही देश ताकतवर नहीं बन जाते, बल्कि सचेत और आधुनिक सोच से लैस, स्वस्थ नागरिकों वाले देश ताकतवर होते हैं। देश कितने भी हों, पूँजीवादी नज़रिए से भी खुला व्यापार और यूरोप जैसी संघीय अर्थ-व्यवस्थाएँ ही समृद्धि का पैमाना हैं। इसलिए अब आपसी समझौतों से नए देश बनते-टूटते हैं। यूरोप में पिछली सदी में आलमी जंगों में करोड़ों की मौत हुई, पर आज वहाँ फ्रांस और जर्मनी जैसे मुल्क एक ही संघ में खुली सरहदों के साथ हैं। जर्मनी और फ्रांस के कुछ सरहदी इलाकों को लेकर विवाद था कि वे किस मुल्क में जाएँगे; इसे शांतिपूर्ण ढंग से मतगणना के द्वारा निपटाया गया। अब अरबों खरबों रुपए खर्च कर फौज पुलिस की मदद से जनता को दबाए रख कर सत्ता में रहने का जमाना चला गया। इसलिए इन बदले हालात में एक ओर तो मनुवादी ताकतें तालीम में हस्तक्षेप कर हमारे बच्चों को मध्य युग में धकेलने की कोशिश में लगी हैं, ताकि जब तक हो सके लोगों को मुक्तिकामी सोच से दूर रखा जा सके; दूसरी ओर उन्हें गाँधी, आंबेडकर, पटेल, हर किसी का सहारा चाहिए। पहले जज़्बा ताकत होता था, उसे आगे बढ़ाने के लिए सरमाया चाहिए होता था, पर अब सरमाया ही ताकत है। इसलिए किसी भी तरह सत्ता में आना और आने के बाद पूँजीवादियों के हित और ताकत बढ़ाते रहना ही उनका ध्येय है। इसलिए उस गाँधी को, जिसकी हत्या इन्होंने की, राजनैतिक स्वार्थ के लिए उसका नाम लेने में भी कोई हर्ज नहीं। वह बाबासाहेब आंबेडकर जो ब्राह्मणवाद के खिलाफ आजीवन लड़ते रहे और अपने कहे अनुसार हिंदू जन्मे, पर मरने से पहले धर्म-त्याग कर बौद्ध हो गए, उसका नाम लेने में इन्हें कोई हर्ज नहीं है। हाल के दशकों तक कांग्रेस ने इनकी चलने नहीं दी थी। कांग्रेस वाले आज़ादी के पहले से ही जहाँ संभव हुआ फिरकापरस्ती को रणनीति की तरह इस्तेमाल करते रहे हैं। साथ ही धर्म निरपेक्षता का नारा देते हुए घोषित फिरकापरस्तों को अलग-थलग भी करते रहे हैं। आखिरकार अतिवादियों ने खुलकर सांप्रदायिक ताकत बनकर सामने आने और सरमाएदारों के साथ खुला समझौता करने का निर्णय ले लिया। इसके लिए इनके चाणक्य ने हर तरह के खूँखार हत्यारों को खुली छूट दी। झूठ की फैक्ट्री के बिना तो इनका अस्तित्व ही नहीं टिक सकता है, इसलिए उस पर चर्चा बेमानी है। कुछ ऐसी ही कोशिशें छात्र राजनीति में लाने की भी होती रहीं। हैदराबाद और जेएनयू की कहानी इसी सिलसिले की कड़ियाँ हैं। हौसला रखिए। न्याय और ईमान के पक्ष में रहिए।■

(लेखक के यह निजी विचार हैं।)

सूर्यबाला

२५ अक्टूबर १९४४ को वाराणसी में जन्म। प्रख्यात साहित्यकार। प्रमुख कृतियाँ - उपन्यास : मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतज़ार तक, अग्निपंखी, यामिनी-कथा, दीक्षांत। कहानी संग्रह : एक इंद्रधनुष, दिशाहीन, थाली भर चांद, मुंडेर पर, गृहप्रवेश, कात्यायनी संवाद, सांझवाती, इक्कीस कहानियां, पांच लंबी कहानियां, सिस्टर! प्लीज आप जाना नहीं, मानुष-गंध, वेणु का नया घर, प्रतिनिधि कहानियां, सूर्यबाला की प्रेम कहानियां। व्यंग्य : अजगर करे न चाकरी, धृतराष्ट्र टाइम्स, देशसेवा के अखाड़े में, भगवान ने कहा था। बाल साहित्य : झगड़ा निपटारक दफ़्तर। सम्मान- प्रियदर्शिनी पुरस्कार, घनश्याम दास सराफ़ पुरस्कार।

संपर्क - बी-५०४, रुनवाल सेन्टर, गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार, मुंबई - ४०००८८ ई-मेल - suryabala.lal@gmail.com

रम्य-रचना

महिला दिवस और फ्रेंच टोस्ट

वह महिला दिवस की खुशनुमा सुबह थी। यानी पूरी तरह अपनी, सिर्फ एक महिला की सुबह। इस सुबह में किसी पुरुष का हस्तक्षेप बिलकुल नहीं था। (क्योंकि पुरुष अभी सो रहा था)। मुझे सारा संसार महिलामय दृष्टिगत हो रहा था। करोड़ों साल से उगते आ रहे सूर्य का प्रभामंडल आज मुझे महिलामंडल सा तेजस्वी लग रहा था।

अखबारों में महिलाओं के और दिनों से ज्यादा चित्र थे। महिला दिवस पर होने वाले कार्यक्रमों की विस्तृत सूचनाएं भी। सड़कों, पार्कों, मैदानों में महिला दिवस के महत्व से संबंधित तख्तियां, बैनर और पोस्टर लगे हुए थे। दूरदर्शन पर महिलाओं की खूबसूरती पर बहस छिड़ने वाली थी। वायुमंडल में सर्वत्र महिला व्याप्त थीं। महिलाओं का, महिलाओं के द्वारा, महिलाओं के लिए मनाया जाने वाला एक अनोखा दिवस।

जब रहा न गया तो एक चैतन्य महिला की हैसियत से सोने वालों को जगाते हुये मैंने सहर्ष, सगर्व घोषणा कर दी, 'जानते हैं! आज हमारा महिला दिवस है!'

'क्या?' वे चादर फेंककर उठ बैठे- 'अरे वाह! बधाई! कांग्रेट्स। अरे निक्की, नयना! उठो, उठो जल्दी। मम्मी को विश करो। हैप्पी विमेंस-डे'। मम्मी खुशहाल हों; महिलाएं खुशहाल हों। हाँ तो बच्चो, चलो, फटाफट सोचा जाए कि कैसे सेलीब्रेट किया जाए मम्मी का महिला दिवस। यानी कुछ अलग ढंग से, समथिंग डिफरेंट...'

महिला दिवस के प्रति उनका यह उत्साह और निष्ठा देखकर मन में नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएं रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगीं। प्रतिक्रिया नंबर एक- 'स्त्री जाति के प्रति आपका यह पूज्य भाव देखकर मैं श्रद्धावनत हूँ। काश! आप जैसे कुछ और पुरुष हिंदुस्तान में होते-तो हम महिलाओं को अलग से 'महिला दिवस' मनाने की नौबत ही न आती। हम लोग साथ-साथ 'व्यक्ति दिवस' या 'इनसान दिवस' न मानते। एक पूरे दिन इनसान न बने रहते।

प्रतिक्रिया नंबर दो- 'हाय री महिला! तेरी भी क्या तकदीर ठहरी! महिला दिवस कैसे मनाया जाए, यह सोचने का हक तक लपककर एक पुरुष ने हथिया लिया। लोग झूठ थोड़ी कहते हैं कि महिलाएं अभी बहुत पिछड़ी हुई हैं सोचने की दिशा में।' इसके पहले कि मैं सोचना शुरू करूं, उन्होंने सोच लिया और जोर-शोर से घोषणा भी कर दी-

'आइडिया! क्यों न महिला दिवस के उपलक्ष्य में नाश्ते में फ्रेंच टोस्ट खाया जाए! ऐ! कैसा रहेगा? आज का दिन भी आधी छुट्टी का, शनिवार। हम ऐलान करते हैं कि आधी छुट्टी वाली शनिवार की यह सुबह स्त्री जाति की खुशहाली के नाम। मैं आज देर से ऑफिस जाऊँगा- घर में रहकर इस खुशहाली की कामना करूँगा।'

मैं उनकी घोषणा पर दंग रह गई। पैरों के नीचे की जमीन धीरे-धीरे खिसकनी शुरू हो गई। घबराकर कहा, 'लेकिन आप देर से ऑफिस क्यों जाएंगे? कोई आपका दिवस थोड़ी है!'

उन्होंने हँसकर कहा, 'तुम्हारी खातिर, एक महिला की खातिर। आज मुझे कोई रोक नहीं सकता देर से ऑफिस जाने से। एक पुरुष द्वारा महिला दिवस के उपलक्ष्य में ऑफिस देर से जाना सभ्य समाज में चर्चा और फख का विषय होगा। रूढ़िवादी, शोषक और बर्बर मानसिकता के सामने एक मिसाल होगी, एक चुनौती होगी। विमेंस-डे पर एक पति द्वारा पत्नी को दिया गया एक नायाब तोहफा होगा।'

फिर भावुक हो आए- 'तुम समझतीं क्यों नहीं! मैं तुम्हें आज के दिन कुछ देना चाहता हूं, लेकिन क्या बचा है मेरे पास? पैसे तुम्हें महीने भर के पहले ही दे चुका, सिर्फ छुट्टियां बची हैं मेरे पास, वही सही तुम्हारे नाम।'

'खैर, कोई बात नहीं, ठीक है।' मैंने कृतज्ञतापूर्वक आभार प्रदर्शन किया।

> रोज मैं तुम्हारी बात सुनता हूं, आज तुम्हें मेरी बात सुननी होगी। तुम्हें मुझको महिला दिवस मनाने की अनुमति देनी ही होगी। अनन्नास केक के साथ-साथ पिज्जा और रोल्स बनाने का मेरा अनुरोध भी मानना ही होगा।

'तो फिर झटपट फ्रेंच टोस्ट की तैयारी करो। अंडे न हों तो निक्की, नयना से कह दो। तब तक मैं जल्दी से शेव किए लेता हूँ, जिससे तुम्हें इंतजार न करना पड़े। फिर सब साथ-साथ सेलीब्रेट करेंगे द ग्रेट विमेंस-डे।'

लहजे का झोंका कुछ इतना खुशगवार था कि अचानक अंदर टिमटिम जलती 'ईगो' की शमा भभककर जल उठी। एकदम हिंदी फिल्मों की खलनायिका की तरह। वही विष बुझी हँसी मेरे नायिकापन की चादर को उधेड़कर रख देती हुई- 'भई वाह! क्या अंदाज है एक लेखिका के स्त्री सरोकार की प्रतिबद्धता का! क्या जबरदस्त शुरुआत है महिला दिवस की! पति और बच्चों को सुबह-सुबह ब्रेक फास्ट में दिया जाता फ्रेंच टोस्ट का शानदार स्वादिष्ट तोहफा। मुबारक हो तुम्हारा महिला दिवस!'

मैं रुआँसी पति के पास दौड़ी। बात संभालने की गरज से पस्त आवाज में कहा, 'सुनिए, आज फ्रेंच टोस्ट न बनें तो कोई हर्ज?'

'क्यों? अंडे नहीं मिले क्या?'

'नहीं, यों ही, फ्रेंच टोस्ट तो मैं अकसर ही बनाती रहती हूं।'

'तो? तो क्या हुआ? यानी?' उन्होंने मेरे अंदर चल रहे शमावाले प्रसंग को भाँपकर बेरुखी से कहा, 'नहीं बनाओगी? चलो भाई बच्चो, चलें अपनी जगह वापस। जो कुछ रोज मिलता था, वह भी आज नाश्ते में मयस्सर नहीं होगा।'

'आप समझे नहीं, बनाऊँगी भला क्यों नहीं! लेकिन मेरे खयाल से फ्रेंच टोस्ट को महिला दिवस वाले घोल में डुबोया जाए तो ही अच्छा (मेरे हक में)।'

'लो भला, तब तो सारा मजा ही किरकिरा हो जायेगा। हम हजार फ्रेंच टोस्ट खाएँ, लेकिन विमेंस-डे के फ्रेंच टोस्ट की बात ही कुछ और होगी। है कि नहीं निक्की, नयना?'

बहुमत को अपने पक्ष में करने की उनकी अनैतिक साजिश लगातार जारी थी। वह तो अच्छा था कि बच्चे अर्थात् बहुमत उम्मीदवार की तरफ से पूरी तरह उदासीन चल रहे थे।

लेकिन मुझे तो गठबंधन सरकार की शर्तें निभानी थीं। लोगों का क्या ठिकाना, कब फिकरा कस दें- घर न हुआ, संसद भवन हो गया। बच्चे प्रसन्न और निश्चिंत थे- उन सांसदों और विधायकों की तरह जिन्हें जो दल चाहे बेचे, जो चाहे खरीदे। सारे दल एक से। कीमत सही मिलनी चाहिए।

हिंदुस्तानी वोटर जिस लाचारी में वोट डालता है, कुछ-कुछ उसी लाचारी में फ्रेंच टोस्ट बना। बाहर-बाहर फ्रेंच टोस्ट तलती जा रही थी, अंदर-अंदर जल-भुनकर कबाब हुई जा रही थी। खासा नॉनवेज माहौल था।

टेबल पर तारीफों के पुल बाँधे जा रहे थे। उम्मीदवार की जीत का जश्न था यह। 'निक्की! नयना! देखा! अरे ये तो सिर्फ शुरुआत है हमारे द्वारा मनाए जाने वाले महिला दिवस की। आगे-आगे देखिए, होता है क्या'... मुझे अपनी कुरसी से उठने के लिये कसमसाते देख बड़े प्यार से टोका, 'तुम आराम से बैठो। मेरे लिए टिफिन बनाने के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं। मैंने सोच लिया है अब, आज ऑफिस जाऊँगा ही नहीं। इत्मीनान से घर में ही लंच लूंगा।' 'पूरा दिन महिला दिवस के नाम।' मेरी घिग्घी बँध गई। अंदर यकायक जलती शमा को अब समझा पाना मुश्किल था और पति थे कि अपनी रौ में बोले जा रहे थे, 'निक्की! नयना! ऐसा करते हैं, शाम को सक्सेना अंकल, श्रीवास्तव अंकल और खन्नाज को बुला लेते हैं खाने पर। अच्छी-खासी पार्टी हो जायेगी। वो क्या कहते हैं, इफ्तार पार्टियों की तरह- आपसी सद्भाव और महिलाओं के सर्वांगीण विकास के नाम पर। फिर सबकी उपस्थिति में हम हैप्पी विमेंस-डे का केक मम्मी से कटवा देंगे। सुनो, तुम वो अनन्नास केक बनाना। क्या लजीज बनाती हो!'

'आप मेरी एक बात सुनेंगे?'

'हरगिज नहीं! रोज मैं तुम्हारी बात सुनता हूं, आज तुम्हें मेरी बात सुननी होगी। तुम्हें मुझको महिला दिवस मनाने की अनुमति देनी ही होगी। अनन्नास केक के साथ-साथ पिज्जा और रोल्स बनाने का मेरा अनुरोध भी मानना ही होगा और तब पूरे अधिकार के साथ तुम मुझे आदेश दोगी कि मैं शाम की पार्टी में सक्सेना और श्रीवास्तव 'आदि' के साथ अपने बॉस मलकानी और मिसेस मलकानी को भी अवश्य बुलाऊँ। बोलो, वचन दो, तुम मुझे चंदा मलकानी को बुलाने के लिए बाध्य करोगी न? यह तुम्हारा दिवस है। अपने दिवस पर सिर्फ एक वचन नहीं दे सकतीं! वचनं देहि देवि! अन्यथा मैं प्रार्थनाओं, याचनाओं पर उतर आऊँगा।'

उनके अनुरोधों, प्रार्थनाओं और याचनाओं के आतंकवाद के बीचोबीच खड़ी मैं थरथर काँप रही थी और शमा थी कि वह शियाने अंदाज में अदा खोकर चीखे जा रही थी- 'ईगो पर हथौड़े चल रहे थे- 'भई वाह! फेंटो अंडे, बनाओ केक, मिलाओ मक्खन और क्रीम चंदा मकलानी से कटवाए जाने वाले केक में।'

'चंदा मलकानी! चुप्प, केक तो मैं काटूँगी।' मैंने डपटकर कहा।

"हा-हा-हा!' शमा पूरी बेशर्मी पर उतर आई थी- 'होने दो शाम, चलने दो पार्टी, कटने दो केक... तू देखना, केक कटने से ठीक पहले तेरा पति तेरे कानों में आकर फुसफुसाएगा- प्लीऽऽज! मेरी एक बात मान लो। केक चंदा मलकानी को काट लेने दो। अब महिला तो महिला-चाहे तुम, चाहे चंदा मलकानी! महिला दिवस तो मना न!'■

सुधा दीक्षित

मथुरा में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। कविता एवं सृजनात्मक लेखन में विशेष रुचि। सम्प्रति - बंगलुरू में रहती हैं।

सम्पर्क : sudha_dixit@yahoo.co.in

व्यंग्य-रचना

चल सन्यासी मंदिर में

जादूगर पी.सी. सरकार अनेक बाबाओं से ज्यादा बड़े ज़्यादा करतब दिखाते थे। तथाकथित बाबा तो बस एक चुटकी भस्म हवा में से निकालते थे मगर जादूगर सरकार तो टोपी में से खरगोश निकाल लेते थे।

साहबान! सन्यासी या तो मंदिर में जायेगा या जंगल में। ग़लत! डार्विन के अनुसार जब बन्दर evolve होकर इंसान बन सकता है तो साधु व्यापारी क्यों नहीं बन सकता? बन सकता नहीं हुज़ूर बन चुका है। सुना नहीं – नीचे पान की दुकान, ऊपर गोरी का मकान और बिचली मंज़िल पर विराजमान हैं धर्म के ठेकेदार – सावधान! सावधान!

अंग्रेजी में एक कहावत है 'religion is the opium of masses' अर्थात धर्म भीड़ के लिए, भांग यानि चरस और गांजे के समान है। इसका नशा सर चढ़ कर बोलता है। भक्तों को अन्धश्रद्धा का ऐसा पाठ पढ़ाया जाता है कि वे अक़्ल को ताक पर रख कर सही-गलत में अंतर करना भूल जाते हैं। भूल जाते हैं कि ये तथाकथित पैग़ंबर, मसीहा, साधु, संत आदि सब इंसान हैं ना कि ईश्वर या ईश्वर का अवतार। इनमें भी इंसानी कमज़ोरियाँ उतनी ही मात्रा में पाई जाती हैं जितनी हममें और आपमें। कहने को तो हम भी कह सकते हैं कि हम बहुत आध्यात्मिक व्यक्ति हैं - जो कि हम हैं; लेकिन यह बात हम डंके की चोट पर (टेलीविज़न के पर्दे पर या भीड़ जमा करके) नहीं कहते। अरे भैया हम जो हैं सो हैं। ये हल्ला बोल वाली फ़ितरत उन लोगों की होती है जो वो नहीं होते जो दिखाते हैं। हाँ हम चमत्कार नहीं कर सकते। बाबा लोग कर सकते हैं। तो क्या हुआ! इस हिसाब से पीसी सरकार, जो इतने बड़े जादूगर थे, बहुत बड़े संत या बाबा माने जाने चाहिए। वो तो सांई बाबा से भी ज़्यादा बड़े करतब दिखाते थे। बाबा तो बस एक चुटकी भस्म हवा में से निकालते थे मगर जादूगर सरकार तो टोपी में से खरगोश निकल लेते थे।

ख़ैर, मुद्दा यह है कि बाबा लोग चरस, गाँजा, पान, भांग ना जाने क्या क्या खाते हैं; अघोरी तो... चलें छोड़ें वो क़िस्सा फिर कभी। देवदासी प्रथा भी इन्ही बाबाओं की बनाई हुई थी। शनि के मंदिर में औरतों का प्रवेश निषेध भी इन्हीं की करतूत है। निषेध तो विधवा विवाह भी था। परम्परा तो सती होने की भी थी। यह सब स्त्री विरोधी परम्पराएँ समाप्त की गयीं ना। शनि मंदिर निषेध बरकरार है। पिटने का डर ना हो तो ये लोग देवदासियों को भी पुनर्जीवित कर दें। बिना देवदासी के भी आसाराम जैसे बाबा ने कौन सी कसर छोड़ दी।

सबरीमला के एक पंडित ने कहा कि प्रवेश निषेध तो १० से ५० वर्ष की आयु तक की स्त्रियों के लिए है। जवान औरतों को देख कर हमारा ध्यान भटक जाता है। सही बात! विश्वामित्र जैसे संत का ध्यान भी मेनका को देख कर भटक गया था, ये तो उनके सामने छछूंदर भी नहीं हैं; लेकिन कोई हमें बतायेगा कि ये ध्यान भटकना - ये असंयम किसकी गलती है? महाज्ञानी, महापुरुष संत महाराज की या स्त्रियों की? भक्तों की जमात में शामिल साधारण पुरुष असंयम की बात करें तो समझ में आता है लेकिन ये बाबा किस मुंह से संत बनते हैं? अगर हमारा मन आम देख कर ललचा जाता है तो क्या आम उगाना बंद कर दें? अरे इनसे अच्छी औरतें हैं जो हैं जो बिना ज्ञान ध्यान और पंडिताई का दावा किये मर्यादा से नहीं भटकतीं वरना वो भी दो चार देवदास रख लेतीं।

चलिए गोरी को ऊपर के मकान में छोड़ते हैं और नीचे पान की दुकान पर आते हैं। पान की दुकान यानि भानुमति का पिटारा। जिस चीज़ की दरकार हो वो हाज़िर है। भई व्यापार है। हाँ तो धर्म का व्यवसाय करने वाले बाबा लोग भी अपना व्यापार हर दिशा में फैला देते हैं।

पतंजलि ब्रांड किस क़दर मशहूर हो रहा है। चंदन के हार, देसी मसाले और गाय के घी तक तो ठीक था। लेकिन बाबा तो नूडल्स भी बेचने लगे – उसके लिए बेचारी मैगी पर बैन लगवा दिया। बतौर गब्बर 'बहुत नाइंसाफी है।'

बाबा रहीम (गुरमीत) आजकल बड़ी सुर्ख़ियों में हैं। वे तो फिल्मों में भी अदाकारी दिखाते हैं। नाचते गाते हैं। काफ़ी रंगीन मिज़ाज हैं। वे भी एक फ़ूड चेन चलाने की योजना बना रहे हैं। भाई लोगों परंपरा तो यह भी है कि सन्यासी को भौतिकता से दूर रहना चाहिए। आध्यात्म में अधिक व्यस्त रहना चाहिए। फ़ूड चेन बना कर, नूडल्स और बिस्कुट आदि बेचकर - वस्तुतः बनियागीरी करके - क्या ये संत महानुभाव परम्परा नहीं तोड़ रहे? नहीं जी यह तो प्रगतिशीलता है, विकास है।

बस ये आधुनिकता का आवरण औरतों के मामले में मुखौटे की भांति उतर जाता है और इनका असली चेहरा सामने आ जाता है। हमेशा आपस में मारकाट करने वाले पंडित और मुल्ला औरतों के मसले पर एकमत हो जाते हैं। कहाँ और किस तरह औरतों को नीचा दिखाया जाये ऐसा कोई मौका ये धर्माधिकारी नहीं छोड़ते। दरअसल औरतों को चाहिए कि वे आडंबर वाले धर्म को एकदम त्याग दें। फिर देखिये इन मज़हबी ठेकेदारों का आधा धंधा सेंसेक्स की भांति क्रैश हो जायेगा। बचपन में गया करते थे -

नीम हाकिम खतरा-ए-जान, नीम मौलवी खतरा-ए-ईमान
वो पंडित जाये भाड़ में, औरत का ना करे सम्मान

वीर तुम बढ़े चलो : इस इलेक्ट्रॉनिक्स के ज़माने में हमारे बच्चे पुरानी पीढ़ी से कहीं ज़्यादा बुद्धिमान हो गए हैं। अंततः वह कहावत सही हो ही गयी - कटोरे में कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा। बहुत अच्छा है। केवल गुरू और पिता ही अपने नौनिहाल को अपने से अधिक सफल देखना पसंद करते हैं। बाकी लोग तो बस जलते कुढ़ते रहते हैं। मगर साहबान हमें यह नहीं पता था कि ये इलेक्ट्रॉनिक यंत्र हमारे बच्चों को बहादुर भी बना देंगे। देखिये ना अपने भारत के दिल - दिल्ली के जाने-माने विद्यालय जेएनयू और जाधवपुर विश्वविद्यालय के छात्र खुले आम जान हथेली पर रख कर पाकिस्तान के झंडे लहराएंगे – अफ़ज़ल गुरु को शहीद बतायेंगे। ऐसा करते वक़्त ना तो के उनके दिल में कोई खौफ होगा, ना ही आँखों में किसी क़िस्म की पशेमानी। ऊपर से तुर्रा यह कि पुलिस और सरकार जब वाजिब कार्यवाही करती है तो वे सीना तान कर 'अभिव्यक्ति की आज़ादी' की बात करते हैं। इस आज़ादी के तहत क्या वो अपने अम्मा-बाबा को भी गाली दे देंगे ?

अब जब दिल्ली बोले तो कोलकाता वाले कैसे पीछे रह जाते! तू डाल-डाल तो मैं पात-पात। तो भैया जाधवपुर विद्यालय ने भी दे दिए मार्चिंग ऑर्डर। सारे के सारे विद्यार्थी (कौन-सी विद्या ?) लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट करते हुये निकल आये 'आज़ादी आज़ादी' का नारा लगाते हुये।

अरे यार दे दो ना इन्हें आज़ादी। या तो जलावतन करके भारत देश से आज़ाद कर दो (वीसा ज़ब्त कर लेना) या सीधे ज़िंदगी से आज़ाद करके अफ़ज़ल गुरु के पास भेज दो। कुछ गंदगी ही साफ़ हो जायेगी - भारत स्वच्छ हो जायेगा। अफ़ज़ल भी खुश हो जायेगा यार - दोस्तों से मिल कर। वो शेर सुना है ना –

कैस जंगल में अकेला है मुझे जाने दो,
ख़ूब गुज़रेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो

और किसी भी देश में इन देशद्रोहियों का सर क़लम हो चुका होता। पाकिस्तान ने विराट कोहली की तारीफ करने के जुर्म में एक बन्दे को सात साल के लिए जेल में बंद कर दिया; यहाँ अफ़ज़ल को शहीद बता कर बोलने की आज़ादी मांगी जा रही है। आखिर प्रजातंत्र है भाई। बड़े अफ़सोस के साथ अमित हर्ष की दो पंक्तियाँ लिखने का मन हो रहा है -

कुछ तो खोट है हमारी वतन परस्ती में
वरना इतनी हिमाक़त ये अनासिर नहीं करते

पत्रकार भी कुछ कम नहीं है। गंगा तो पहले ही मैली हो चुकी है - ये और आ गये बहती गंगा में हाथ धोकर उसे और मैला करने। मृदुला मुखर्जी फ़रमाती हैं कि विद्यार्थी कुछ भी कहें उसे देश विरोधी मत कहो। राना अयूब के हिसाब से वे ग़लत हो ही नहीं सकते। उनका सौरभ शर्मा से कहना है अफ़ज़ल का सम्मान करो। वे ओमर खालिद से नहीं कहतीं कि देश का सम्मान करो। विक्रम सिंह को लगता है बात का बतंगड़ बनाया जा रहा है तो सीताराम येचुरी जेएनयू में दखलंदाज़ी के ख़िलाफ़ हैं। वाह देशभक्ति के प्रतीक हैं ये महानुभाव। और हाँ झुनझुना बजाने में इनका कोई सानी नहीं। एक ख़बर को पकड़ कर बैठ जाते हैं और टन टना टन - टन टना टन बजाये जाते हैं। नई ख़बर मिलने तक पुरानी वाली का जिस क़दर चर्वण ये पत्रकार करते हैं उतनी जुगाली तो भैंस भी नहीं करती। Amul u Taste of India Rahul u Waste of India उर्फ़ 'नन्ना मुन्ना राही हूँ, देश का सिपाही हूँ, बोलो मेरे संग जै हिन्द, जै हिन्द, जै हिन्द।' राहुल भुट्टो उर्फ़ पप्पू जी फरमाते हैं उन्हें देशभक्ति का तमगा नहीं चाहिए। चाहिये भैया ज़रूर चाहिये क्योंकि देशभक्त तो तुम हो ही नहीं। जितना नुकसान तुमने देश का किया है उतना तो दुश्मनों ने भी नहीं किया। एक पते की बात बतायें भैया – grow up! यानि बड़े हो जाओ। हमारे यूपी में एक कहावत है 'बैल ब्याहेगा नहीं तो क्या बुड्ढा नहीं होगा ?' तुम्हारी भी अगर शादी नहीं हो रही है तो क्या पप्पू ही बने रहोगे ? देखो भैया हम कोई मोदी के मुरीद नहीं हैं लेकिन फ़िलहाल हमें उनके अलावा कोई और नज़र भी नहीं आ रहा है। कांग्रेस की नाव तो भ्रष्टाचार के बोझ से डूबी जा रही है। ममता, मुलायम, अखिलेश, नितीश, सिद्दरमैया सबकी आँखों पर 'मैं, मुझे, मेरा और मेरे लिए' की पट्टी बंधी है। तो बचा कौन- मोदी! इसीलिए सब मिल के मोदी को मटियामेट करने में लगे हैं।

मुझे आरक्षण से संरक्षण चाहिए : भाइयों और बहनों, लंगड़े, लूले, अंधे, यहाँ तक कि पागल भी अगर बैसाखी मांगें तो समझ में आता है; लेकिन हट्टे, कट्टे, अमीर सहारे का तक़ाज़ा करें तो हमारा हाज़मा ख़राब हो जाता है। ये पाटेदार, जाट जो अच्छे खासे पैसे वाले हैं- माशरे में ऊँचे स्थान पर होने के आलावा खासी nuisance value भी रखते हैं; फिर भी आरक्षण माँगते हैं। हर किसी को wheel chair चाहिए। कितनी अजीब बात है कि अकर्मण्य लोग अब ताक़त का इस्तेमाल खुद को कमज़ोर कहलाने में कर रहे हैं।

ये लोग औरों का सुख जीने निकल आये हैं
अगर अपना ही गम होता तो यूँ धरने नहीं देते

जिस तरह की लूटमार, आगज़नी और हत्याएँ जगह-जगह पर हो रही हैं, क्या उसे आरक्षण देकर दोषियों को पुरस्कृत किया जाये ? जी नहीं। ये सब एक साज़िश है। साज़िश है राजनैतिक पार्टियों की, जो मौजूदा सरकार को पलटना चाहती हैं; वरना वो सब मसले-मुआमले जो यूपीए सरकार के वक़्त हुए थे अब क्यों सर उठा रहे हैं। विरोधी पॉवर में आने के लिए कुछ भी कर गुज़रेंगे - डरे हुए हैं अँधेरे, ये सूरज को बुझाना चाहते हैं। पहले गुजरात जला, आज हरियाणा जल रहा है। समय आ गया है कि इस बीमारी को जड़ से ही खत्म कर दिया जाये। आरक्षण केवल चार श्रेणियों को मिले - १.आर्थिक आधार पर, हर गरीब को किसी भी जाती धर्म का हो। २. हर अपंग (दिव्यांग) को। ३. हर अनाथ को। ४. शहीदों के परिवार को।

चलते-चलते एक सुझाव और – बॉर्डर पर भी आरक्षण होना चाहिये। मोर्चा संभालने में सबसे आगे SC और ST फिर उसके पीछे OBC तथा सबसे पीछे general सिपाही जो मेहनत से पढ़ कर और पास होकर सेना में आये। तब पता चलेगा कितना मज़ा है आरक्षण में; वरना हम भी धरना दे देंगे इन आततायियों के ख़िलाफ़ संरक्षण की मांग करके।■

कांग्रेस की नाव तो भ्रष्टाचार के बोझ से डूबी जा रही है। ममता, मुलायम, अखिलेश, नितीश, सिद्दरमैया सबकी आँखों पर 'मैं, मुझे, मेरा और मेरे लिए' की पट्टी बंधी है। तो बचा कौन- मोदी! इसीलिए सब मिल के मोदी को मटियामेट करने में लगे हैं।

बी.मरिया कुमार

हुबली, धारवाड़ में जन्म। बचपन मैसूर में बीता। गुंटूर, विजयवाड़ा और हैदराबाद में अध्ययन। रसायन में स्नातक एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार में स्नातकोत्तर तथा पी.एच.डी. की उपाधि। औद्योगिक संबंध और कार्मिक प्रबंधन में पी.जी. डिप्लोमा। १९८५ में भारतीय पुलिस सेवा में शामिल। तेलुगु के प्रख्यात रचनाकार। विविध विषयों पर विस्तृत आलेख प्रकाशित। कविता एवं समसामयिक विज्ञान विषयों की डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। तेलुगु एवं अंग्रेजी कविताओं का रशियन, सिंधी एवं हिंदी में अनुवाद प्रकाशित। भारत भाषा भूषण, विद्यावाचस्पति, आचार्य सम्मान, अमेरिकी प्रशासन के ईओडी पदक तथा भारतीय पुलिस पदक से सम्मानित। ब्रिटिश पुलिस इंस्टीट्यूशन, यू.के. तथा आतंकवाद विरोधी कार्यक्रम के तहत संयुक्त राज्य अमेरिका का दौरा। सम्प्रति - डायरेक्टर जनरल, पुलिस रिफार्म।

सम्पर्क : b.mariakumar@gmail.com मोबाइल 09425824258

अनुवाद

अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद राजेश करमहे

जीवनशैली प्रबंधन

भाग : दो

क्रोध पर नियंत्रण कैसे करें ?

अंग्रेजी का शब्द 'anger' (क्रोध) इस भाषा के एक अन्य शब्द 'danger' (खतरा) से मात्र एक अक्षर 'd' हटा देने से बन जाता है। सचमुच 'anger' या क्रोध अंगार जैसा खतरनाक होता है। यह स्वयं का दुश्मन है। क्रोध या गुस्सा ही सब तरह का पाप कराता है। क्रोध चिंता को जन्म देता है। क्रोध को स्नेह से विस्थापित करना चाहिए। हम जितना ज़्यादा स्नेह या प्रेम बाँटते हैं, हम उतना अच्छा बनते जाते हैं। हमें प्रेम का पोषण करना चाहिए, न कि क्रोध का। क्रोध का एक उपचार 'ठहर जाना' है। इसी कारण लोग कहते हैं कि जब क्रोध आये तो दस तक गिनती करो, फिर बोलो। जब अत्यधिक क्रोध आये तो सौ तक गिनती करो, फिर कुछ न बोलो। अगर आप एक मिनट के लिए क्रोधित होंगे तो आप सुख के साठ सेकंड गँवा देंगे।

रॉबिन शर्मा कहते हैं, 'संकट के क्षण में अपने आप को शांत रखना आपको वर्षों तक दर्द और मनोव्यथा से बचा सकता है। अपने गुस्से पर नियंत्रण की एक रणनीति है, जिसे मैं 'त्रिस्तरीय प्रवेशद्वार जाँच' कहता हूँ। प्राचीन ऋषि कहते हैं कि वही बात कहो जो शब्द उच्चारण करने से पहले त्रिस्तरीय प्रवेशद्वार जाँच में सफलता पूर्वक पार हो जाए। पहले प्रवेशद्वार पर वह अपने आप से कहते थे, 'क्या उच्चरित शब्द सत्य है?' अगर हाँ, तो शब्द दूसरे प्रवेशद्वार तक पहुँच सकते हैं। दूसरे प्रवेशद्वार पर ऋषि कहते थे, 'क्या ये शब्द आवश्यक हैं?' अगर हाँ, तो ये शब्द दूसरे प्रवेशद्वार तक पहुँच सकते हैं। तीसरे प्रवेशद्वार पर वह कहते थे, 'क्या ये शब्द उदार हैं?' अगर हाँ, तभी शब्द होठों से निकलकर बाह्य जगत में प्रसारित हों।'

अगर कोई दूसरे पर क्रोध करता है, तो यह दोनों ओर से बढ़ता है। अगर कोई दूसरे की प्रशंसा करता है, तो यह भी दोनों ओर से बढ़ता है। अच्छे कार्यों के लिए प्रशंसा में कमी या अभाव नहीं होना चाहिए। 'जन प्रशंसा' चमत्कार उत्पन्न करती है। यह विवाद और गलतफहमी को दूर भगाती है। प्रसिद्ध आनन्द गुरु टेल बेन - शहर भी कहते हैं कि लोगों की प्रशंसा करना परस्पर आनंद बढ़ाता है। क्रोध कभी-कभी दबी भावनाओं के उभार के रूप में प्रकट होता है। तब इसे निर्जीव चीजों पर, यथा - जादू वाली गुड़िया को नष्टकर, गेंद में पिन गड़ाकर, चिट्ठी को फाड़कर निकालना चाहिए। अन्यथा क्रोध न केवल आपका दुश्मन बढ़ाता है, बल्कि आप स्वयं अपने दुश्मन भी बन जाते हैं।

यह कथा पठनीय है - एक अत्यधिक खराब गुस्सा करने वाला छोटा लड़का था। उसके पिता ने उसे कांटियों से भरा थैला दिया और कहा कि जब-जब उसे गुस्सा आये, तब-तब वह एक कांटी को दीवार में ठोंक दे।

पहले दिन लड़के ने दीवार में कुल सैंतीस कांटियाँ ठोंक दी। सप्ताह बीतते बीतते जब वह अपने गुस्से पर काबू पाना सीखता रहा, दीवार में ठोंके जाने वाले कांटियों की संख्या कम होती चली गयी। उसने जान लिया था कि दीवार में कांटियों को ठोंकने की अपेक्षा, गुस्से पर काबू पाना सरल था। अंत में वह दिन आ ही गया जब लड़का कभी भी गुस्सा नहीं करता था। उसने अपने पिता को इस सम्बन्ध में बताया। उसके पिता ने उसे प्रतिदिन एक कांटी निकालने की सलाह दी, जो उसने इतने दिनों क्रोध पर काबू पाने के लिए ठोंका था। दिन बीतते गए और अंत में वह दिन भी आया जब उस छोटे लड़के ने अपने पिता को बताया कि सभी कांटियाँ उखाड़ ली गयी हैं।

पिता ने अपने पुत्र का हाथ पकड़ा और उसे दीवार तक ले गए। फिर पिता ने कहा, 'मेरे बेटे, तुमने बहुत अच्छा किया, किन्तु दीवार के छिद्रों को देखो। यह दीवार कभी भी पुरानी जैसी नहीं हो पाएगी। जब तुम कोई बात क्रोध में कहते हो, तो यह ऐसा ही घाव छोड़ जाता है।'

निश्चित रूप से अन्य मानवीय भावनाओं की तरह क्रोध भी एक स्वाभाविक मनोवृति है। बुरी मनोवृत्तियों की दिशा अपने हित में मोड़ा जा सकता है। यही बात क्रोध के लिए भी सम्भव है। महात्मा गाँधी को जब दक्षिण अफ्रीका के पीटरमेरीजबर्ग रेलवे स्टेशन पर रेलगाड़ी से बाहर फेंक दिया गया था, तो वह क्रोधित हो गए थे। तब उन्होंने अपने क्रोध का उपयोग भारत को ब्रिटिश शासन से आज़ादी दिलाने के लिए किया।

> हमें कभी भी समय से स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। समय सदा हमसे आगे रहता है। अतएव शांतिपूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए, हमें धीरे-धीरे किन्तु सतत् बढ़ना चाहिए। हड़बड़ी सदा गड़बड़ी करवाता है। अगर हम दौड़ेंगे तो समय हमें निगल जायेगा। अगर हम ठंडे मन से रहेंगे, तो समय भी अनुकूल होगा।

अतएव, ऐसा कुछ भी नहीं है। हम अपने क्रोध का इस्तेमाल अपनी बेहतरी के लिए कर सकते हैं। अगर आप अगली बार क्रोधित होवें, तो धूम्रपान या कोई अन्य बुरी आदत को छोड़ दें।

'उदासी और क्रोध दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। उदासी दमित क्रोध है और क्रोध प्रकट उदासी। उदासी और क्रोध दोनों ही अप्रसन्नता की दशा है, जो प्रायः स्वयं से प्रेम के अभाव में होती है।' (विश्वास चह्वाण)

'क्रोध तार्किक सोच को नष्ट करता है और तार्किक सोच क्रोध को - चुनाव आपका है।' (केतन आर शाह)

समय से स्पर्धा न करें ?

अत्यधिक कार्य मनुष्य को समय के साथ स्पर्धा कराता है। यह टाइप ए सदृश व्यक्तित्व की ओर अग्रसर करता है, जिसमें व्यक्ति एक ही समय पर सारे काम कर लेना चाहता है। टाइप ए व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष जुड़ाव दिल की बीमारी से है। अतएव यह बेहतर है कि अनावश्यक कार्य को दूर हटाना चाहिए। हमें उतने ही कार्य का सृजन करना चाहिए, जितना हम पूर्ण कर पाएं। चीजों को सीमा के अंदर रखना सदैव अच्छा है।

हमें कभी भी समय से स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। समय सदा हमसे आगे रहता है। साथ ही समय लोगों के साथ सामंजस्य भी बिठाता है। अतएव शांतिपूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए, हमें धीरे-धीरे किन्तु सतत् बढ़ना चाहिए। हड़बड़ी सदा गड़बड़ी करवाता है। अगर हम दौड़ेंगे तो समय हमें निगल जायेगा। अगर हम ठंडे मन से रहेंगे, तो समय भी अनुकूल होगा।

डगलस ई. कैसल का उद्धरण है, 'भविष्य के वास्ते तैयारी करो, क्योंकि वर्त्तमान क्षण त्वरित गति से इतिहास बन जाएगा।'

स्वामी विवेकानंद ने कहा, 'विस्तारीकरण का अर्थ जीवन है, संकुचन का अर्थ मरण।' आकाश विस्तीर्ण होता है, समय सिकुड़ता है। अतएव सामान्य तर्क है, 'मरण से स्पर्धा नहीं करो।' वस्तुतः शीघ्र शुरू करो और पर्याप्त समय लो।

आप अनावश्यक कार्य क्यों सृजित करते हैं ?

एक कहावत है, 'समय और ज्वार किसी की प्रतीक्षा नहीं करते हैं।' किन्तु तथ्य तो यह भी है कि समय ज्वार की भी प्रतीक्षा नहीं करता है। अगर समय बीत गया, तो इस पर घबराने की आवश्यकता नहीं है। समय सीमा के भीतर आराम से काम पूरा करने जैसा कुछ भी नहीं है। साथ ही साथ यह सुनिश्चित महत्वपूर्ण है कि कम समय में ही हम कार्य के बोझ को सम्पादित करने का प्रयास न करें। अगर काम करने की सीमा में है, तब हम इसे समय के भीतर कर सकते हैं। लेकिन यह हमारे अपने हाथ में है कि कार्य को बढ़ने दें या नहीं। कोई भी अपनी मुठ्ठी में खुशियाँ समेट सकता है, अगर वह अपना दिन यथाशक्ति काम में बिठाये और रात में पूरा विश्राम करे।

पार्किंसन नियम कहता है, 'कार्य इसके लिए तय समय के अनुसार फैलता है।' अंग्रेज इतिहासकार सिरिल नॉर्थकोट पार्किंसन ने यह अवलोकन किया कि अधिकतम संख्या में अधिकारी अपने आप को व्यस्त रखने के लिए कार्य का सृजन करते हैं और बिना किसी परिणाम के अपनी सत्ता को न्यायोचित ठहराते हैं।

बेसिरपैर के काम बढ़ाने के बारे में एक आँख खोल देने वाली कहानी इस प्रकार है। 'जंगल' नाम के एक कॉरपोरेशन में एक चींटी जल्दी-जल्दी पहुँची ताकि ज़्यादा से ज़्यादा उत्पाद दे सके। लाभ आकर्षक था। उस कॉरपोरेशन के प्रमुख शेर ने सोचा कि चींटी और भी ज़्यादा उत्पादन कर सकती है, यदि उसे कोई अधीक्षक या सुपरवाईजर मिल जाए। अतएव एक नये सुपरवाईजर के रूप में मधुमक्खी आयी और घड़ी के अनुसार उपस्थित प्रणाली को लागू किया गया। उसने एक खरगोश को अपना प्रतिवेदन टाइप करने के लिए भी नियुक्त किया। शेर मधुमक्खी के प्रतिवेदन से खुश था और उसने मधुमक्खी को इसे बोर्ड की मीटिंग में भी प्रस्तुत करने को कहा।

आईटी विभाग भी बनाया गया और कंप्यूटर लगाये गए। बंदर को इसका प्रभारी बनाया गया, जिसने अपने सहायक और वातानुकूलन यंत्र की माँग रखी।

कागजी कार्य इतने बढ़ गए कि चींटी, जो एक समय ज़्यादा उत्पादन करती थी, अब अपना ज़्यादा समय मीटिंग में देने लगी।

बंदर ने कार्य और बज़ट नियंत्रण रणनीतिक यथासम्भव विस्तारीकरण योजना बनायी। धीरे-धीरे जहाँ चींटी काम किया करती थी, वह जगह अब उदासी की जगह में तब्दील हो गया। अब कोई हँस न पाता था। सभी कर्मी दुःखी हो गए थे। इसी समय मधुमक्खी ने शेर को विश्वास दिला दिया कि कार्यालय के वातावरण का मौसमी अध्ययन कराया जाए।

विभाग के खर्च की समीक्षा के बाद शेर ने पाया कि उत्पाद पहले की तुलना में बहुत कम हो गया था, किन्तु बाहरी खर्च अत्यधिक बढ़ गया था।

शेर ने एक प्रसिद्ध कंसलटेंट उल्लू की सेवा अंकेक्षण और समाधान सुझाने के वास्ते ली। उल्लू ने तीन महीने तक जाँच की और यह रिपोर्ट दिया कि विभाग में ज़रूरत से ज़्यादा कर्मी हैं और यह अत्यधिक नुक्सान में चल रहा है। अंततः कॉरपोरेशन खत्म हो गया।■

(तीसरा अध्याय - जीवनशैली प्रबंधन समाप्त)

"To be or not to be happy" पुस्तक का अनुवाद

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

५ सितम्बर १८८८ - १७ अप्रैल १९७५

भारत के प्रथम उप-राष्ट्रपति और द्वितीय राष्ट्रपति रहे। उनका जन्मदिन (५ सितम्बर) भारत में शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति के संवाहक, प्रख्यात शिक्षाविद्, महान मनीषी दार्शनिक एवं शिक्षक और एक आस्थावान हिन्दू विचारक थे। उनके इन्हीं गुणों के कारण सन् १९५४ में भारत सरकार ने उन्हें सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से अलंकृत किया।

अनुवाद

नई विश्व सभ्यता

अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद **गंगानंद झा**

मनुष्य हर जगह एक ही हैं और सबों के महानतम मूल्य एक समान होते हैं। उनके बीच फर्क, जो तयशुदा तौर अर्थपूर्ण होते हैं, का सरोकार बाहरी, अस्थायी सामाजिक हालात से रहता है तथा उन हालात के साथ ही बदलता रहता है। आज के परिवहन एवम् संचार के तरीके सीमाओं को भंग कर रहे हैं तथा सहयोग के सेतुओं का निर्माण कर रहे हैं। सारे समाजों का तेजी से ओद्योगिकरण हो रहा है और हर समाज विज्ञान की भाषा में बातें कर रहा है। मूल्यों के नए-नए मानक हर जगह उभड़ रहे हैं। एक नई विश्व सभ्यता के यन्त्रणामय जन्म में भागीदारी करने के लिए हम सबों का आह्वान किया जा रहा है। यह केवल अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवम् समझदारी से ही मुमकिन है। अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के बावजूद संसार एक होता जा रहा है।

हाल की घटनाओं से एक गलत धारणा बन रही है कि जबकि पश्चिम वैज्ञानिक नजरिया रखता है हम पूरब वाले आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखते हैं। पहला तर्कसंगत है और दूसरा धार्मिक। पहला गतिशील एवम् सतत परिवर्तनशील है तो दूसरा स्थिर तथा अपरिवर्तनशील। अगर हम सुदूर अतीत में देखें तो हम देखेंगे कि भारत तथा चीन ने तीन चार सौ साल पहले तक विज्ञान एवम् प्रोद्यौगिकी में मौलिक अवदान किया था और पश्चिम के धार्मिक आदर्शवाद एवम् पवित्रता में उल्लेखनीय योगदान रहे हैं। हम जितना अधिक परस्पर को समझते जाएँगे, उतना ही हम महसूस करेंगे कि हम एक जैसे हैं। पूर्व और पश्चिम दो भिन्न प्रकार की चेतना और चिन्तन के तरीकों का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

विज्ञान और धर्म हर संस्कृति के पहलू होते हैं। मानव प्रकृति में तार्किक एवम् आध्यात्मिक-अल्लंघनीय रूप से परस्पर गुँथी हुई दो लड़ियों के रूप में होती हैं। यद्यपि इनके स्वरूप बदले हुए होते हैं। इतिहास के अलग अलग कालखण्डों में कभी पहला तो कभी दूसरा अधिक अधिक प्रखर रहा हो सकता है।

गत पचास सालों के दौरान पारम्परिक अध्यात्मविज्ञान के विरुद्ध विद्रोह उभड़ा है पश्चिम में थेल्स से व्हाइटहेड तक, भारत में ऋग्वेद के ऋषियों से हमारे समय तक दर्शन काल्पनिक रहा है। समसामयिक विश्व में तार्किक निश्चयात्मकतावाद एवम् अस्तित्ववाद अध्यात्मविज्ञान के विरुद्ध विद्रोह का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दर्शन शास्त्र में तथाकथित विद्रोह बिलकुल नई बात नहीं है। ग्रीक चिन्तन एवम् ब्रिटिश अनुभववाद में निश्चयात्मक प्रवृत्तियाँ पहले भी रही हैं।

ऐसी युक्ति दी जाती हैं कि कोई चीज तब तक सत्य नहीं हो सकती जब तक कि उसे इन्द्रीय अनुभव द्वारा समझा नहीं

जा सकता। प्राचीन ग्रीक चिन्तन में प्रोटैगॉरस ने इसकी हिमायत की और प्लैटो ने इसकी आलोचना की। आधुनिक यूरोपीय चिन्तन में ह्युम के अनुसार ईश्वर, आत्मा, एवम् अमरत्व अथवा वस्तुगत नैतिक मानदण्ड के सम्बन्ध में कोई भी सत्य अथवा सार्थक अभिकथन नहीं हो सकता। ह्युम इनके बारे में विश्वास को कुतर्क और भ्रम मानकर त्याग देते हैं। काण्ट ने इस विचार को अस्वीकार किया।

कॉमटे ने निश्चयात्मकता की अवधारणा को सांस्कृतिक विकास के अपने तीन चरणों के साथ उद्घाटित किया। हर संस्कृति का पहला चरण अध्यात्म विद्या सम्बन्धी होता है, कॉमटे अध्यात्म विद्या को अन्धविश्वास का दूसरा नाम मानते थे। तत्व मीमांसा का दूसरा चरण प्राचीन सिद्धान्तों एवम् शक्तियों को देवताओं के स्थानापन्न करता है। निश्चयात्मकता तीसरा चरण है, जो वैज्ञानिक जानकारी का क्षेत्र है।

कॉमटे के अनुभव के सिद्धान्त में हमने भाषाई विश्लेषण की तकनीक का योगदान किया है। ईश्वर, आत्मा और अमरत्व के सम्बन्ध में वक्तव्यों की सार्थकता का कारण भाषाई उलझन है। धार्मिक विश्वासों को 'बकवास' समझा जाता है, इस तरह हम अपने आपको भ्रमित करते हैं। अध्यात्मविज्ञान के सभी स्वरूपों को अलाभकर उद्यम समझा जाता है।

तार्किक निश्चयात्मकता सत्यापन प्रक्रिया अपनाती है। किसी भी वाक्य का वास्तविक अर्थ तभी हो सकता है जब इन्द्रीय अनुभवों द्वारा इनकी पुष्टि की जा सके। धार्मिक प्रस्तावनाएँ प्रयोगाश्रित अनुभवों द्वारा सम्पुष्ट नहीं की जा सकतीं और इसलिए इनका कोई तथ्यात्मक अर्थ नहीं हो सकता।

सार्वभौम स्तर पर मान्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों का इन्द्रीय अनुभवों के द्वारा सत्यापन नहीं हो सकता। हम इस आधार पर प्रकृति के नियमों को नहीं नकारते। सत्यापन का सिद्धान्त स्पष्ट वक्तव्य नहीं होता, न ही इन्द्रीय अनुभवों द्वारा इसकी सम्पुष्टि की जा सकती है।

मानव जीवन के बाकी पक्षों से बुद्धि का असाहचर्य तार्किक निश्चयात्मिकता की महत्वपूर्ण विशिष्टता है। विज्ञान की चर्चा में गणित, भौतिकी एवम् जीव विज्ञान के साथ सामाजिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा का अध्ययन करने वाले विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

कैम्ब्रिज के प्रोफेसर सी.डी. ब्रॉड ने अपनी Five types of Ethical Theory की प्रस्तावना में कहा है - यह उचित होगा कि पाठक को आगाह कर दिया जाए कि मेरे व्यावहारिक तथा भावनात्मक अनुभव का विस्तार, प्राध्यापक होने के बावजूद, संकीर्ण है। कैम्ब्रिज के कॉलेजों के फेलो सामान्यतः विशिष्ट गुणों अथवा भयंकर दुर्गुणों के दावीदार नहीं हुआ करते। काश, दुनिया के बाकी लोग भी इतने ही भाग्यवान होते। इसके अतिरिक्त मैं आचरण में सही या गलत होने पर कोई विशेष फर्क महसूस नहीं करता। मुझे स्पष्ट रूप से कोई समझ नहीं है कि लोगों के दिमाग में तब क्या रहता है जब वे कहते होते हैं कि वे पाप बोध से ग्रस्त हैं। फिर भी मुझे सन्देह नहीं है कि किसी मायने में यह एक वास्तविक तजुर्बा होता है तथा जिन लोगों को ऐसे तजुर्बे होते हैं, उनके लिए यह अत्यावश्यक रूप से महत्वपूर्ण है और सचमुच में गम्भीर नैतिक एवम् आध्यात्मिक महत्व का हो सकता है। मैं समझता हूँ कि ये तीन व्यावहारिक एवम् भावनात्मक सीमाबद्धताएँ मुझे नैतिक अनुभवों के कुछ पहलुओं को देख पाने में असमर्थ कर सकती हैं। फिर भी इस विषय़ को सांसारिक योजना में अत्यधिक महत्वपूर्ण मानने वाले लोग इनके महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर समझने के उत्तरदायी हो सकते हैं। अच्छे आचरण से यथा नियन्त्रण में रखी गई पवित्रता के लिए स्वस्थ भूख, उत्कृष्ट चीज होती है, लेकिन बाद में 'भूख और प्यास' अक्सर 'आध्यात्मिक मधुमेह' के लक्षण मात्र होते हैं।

दार्शनिक विवेचन के किसी भी गम्भीर प्रयास को इन आधार-सामग्री को विचार में लेना होगा। इसके अलावे गणित तथा भौतिकी द्वारा उपयोग की जानेवाली अवधारणाएँ इन्द्रीय अनुभव में प्रत्यक्षतः सत्यापन योग्य नहीं हैं। उनके द्वारा ऐसे अनुमानों पर पहुँचा जाता है जो अन्ततोगत्वा प्रयोगात्मक स्थितियों के साथ संलग्न किए जा सकते हैं। आध्यात्मिक सिद्धान्त विश्व-प्रकृति की व्याख्याएँ हैं

> ईश्वर, आत्मा और अमरत्व के सम्बन्ध में वक्तव्यों की सार्थकता का कारण भाषाई उलझन है। धार्मिक विश्वासों को 'बकवास' समझा जाता है, इस तरह हम अपने आपको भ्रमित करते हैं। अध्यात्म विज्ञान के सभी स्वरूपों को अलाभकर उद्यम समझा जाता है।

और उनका परीक्षण अवलोकित आधार सामग्री से उनकी पर्याप्तता से, निश्चयात्मक ज्ञान से समन्वय स्थापित करने की क्षमता से होता है। वे महज अटकलबाजी नहीं होतीं, वे तो अनुभव की व्याख्याएँ होती हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के मामलों में, हम उनके परिणामों, जिनकी गणना एवम् अवलोकन की जा सके, का ही हम सत्यापन कर सकते हैं। हम विद्युत ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षण अथवा सापेक्षता का अवलोकन नहीं करते। लेकिन सावधानता से तय की गई परिस्थितियों में अवलोकित तथ्यों की गणना कर सकते हैं। अगर वे सच हों, तो सत्यापन किया जाता है कि उनका अवलोकन वास्तविक था या नहीं। इसे परोक्ष सत्यापन कहा जाता है। आध्यात्मिक सिद्धान्त का इसी तरह का परोक्ष सत्यापन ही हो सकता है।

कुछ आध्यात्मवादी दावा करते हैं कि वे भी अनुभवतावादी हैं क्योंकि वे उन बातों का परीक्षण करते हैं जिनका अस्तित्व है। वे सब इस मूल मान्यता से प्रारम्भ करते हैं कि कुछ का अस्तित्व है। साथ-साथ निश्चयात्मकतावाद हमें प्रकृति तथा धर्म के उद्देश्य को अन्धविश्वास, जादू टोना और अफवाहों से पृथक् करने में मदद करता है।

हर महान दार्शनिक विश्लेषक एवम् अस्तित्ववादी साथ-साथ होता है। वह बौद्धिक विवेक से सज्जित कवि होता है। दूरदृष्टिरहित विश्लेषण आत्मा का क्षरण है, सहजता की बरबादी है। अनुशासनविहीन दृष्टि, अपरीक्षित अन्तर्ज्ञान, महज जुनून, अन्धविश्वास, कट्टरपन और उन्माद के लक्षण हैं।

विश्लेषक एवम् अस्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ सुकरात एवम् प्लैटो में पाई जाती हैं। मध्य युग में भी विभिन्न विचार धाराओं में इन्हें पाया जाता है।

तार्किक विश्लेषण एवम् अस्तित्ववादी अनुभव के बीच हमेशा तनाव रहता है। सक्षम दर्शन को युक्ति एवम् आन्तरिक अनुभव के अधिकार के अखंडिता के द्वारा निरंतरता कायम रखना चाहिए।

पश्चिमी दर्शन से दो दृष्टान्तों पर विचार किया जाए, प्लैटो तथा काण्ट। रूप पर प्लैटो का सिद्धान्त युक्ति के तर्क पर आधारित है। वह रूप को एक स्पष्ट सच्चाई मानते हैं और दृढ़ता से कहते हैं कि परम सौन्दर्य और परम न्याय महज अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि एक दूसरी दुनिया में उनका अस्तित्व है। जब वे अन्य संसार के लिए इस संसार के हितों को गौण बताते हैं तो वह ऑर्फिक एवम् पायथागॉरियन नजरियों के प्रभाव में होते हैं। जो कुछ भी निर्धारित है वह प्रकृति का अतिक्रमण नहीं करता, लेकिन इससे प्रेरित होने वाली आकांक्षा ऐसा करती है।

प्लैटो में गहरे वैराग्य का भाव और दूसरे संसार की दृष्टि है। मृत्यु अन्त नहीं है। एक दूसरा संसार भी है। जहाँ जन्म के पहले और मृत्यु के पश्चात् आत्मा रहती है। यह धारणा मनुष्य के आचरण के प्रतिफलन से बनती है न कि तर्क या ज्ञानमीमांसा से। थिएटेटस में सुकरात मनुष्य का आह्वान करते हैं कि वह यथासम्भव भगवान की तरह होने का प्रयास करे। हम अभाव की भावना महसूस करते हैं। हमें अपनी वर्तमान हैसियत से ऊपर उठना है। मनुष्य अपने आप में अपूर्ण होता है।

काण्ट ने ज्ञान और विज्ञान को भौतिक संसार में सीमाबद्ध किया। लेकिन संसार की प्रकृति के सम्बन्ध में चिन्तन से वे इस नतीजे पर पहुँचे कि यह पूर्ण सत्य नहीं है। इनके अलावे इन्द्रीय संवेदनाओं के परे भी चीजें हैं, जो स्वयंभू हैं। युक्ति की, आत्मा की, संसार की और ईश्वर की अवधारणाएँ है। इन अवधारणाओं से सम्बन्धित सच्चाइयों को वस्तु नहीं कहा जा सकता। उनकी कोई रचनात्मक भूमिका नहीं होकर मात्र नियामक ही होती है। वे हमें अपने अनुभवों को संगठित करने तथा उनके महत्व का आकलन करने की योग्यता प्रदान करते हैं। विज्ञान का अनुसरण निष्ठा, अपने श्रेष्ठत्व पर अथवा संसार के विवेक पर एवम् युक्ति की निष्ठा पर आशा एवम् विश्वास पर आधारित होता है।

नैतिक एजेण्ट के रूप में हमारी अपनी प्रकृति का परीक्षण काण्ट की अवधारणाओं को अधिक गहरे और समृद्ध अर्थ तलाशने में सक्षम करता है। कर्तव्य का तथ्य उस सच्चाई का सकारात्मक दृष्टान्त है जिसकी ओर युक्ति की अवधारणा निर्देशित करती हैं। यह ऐसी सच्चाई है जो एक निश्चित अन्तर्वस्तु रहने के बावजूद अनुभव के परिप्रेक्ष्य में वस्तु नहीं होती।

भारतीय चिन्तन में अस्तित्ववादी कष्ट एवम् युक्तिवादी प्रतिफलन दोनों ही शामिल हैं। भारतीय चिन्तन का ध्यान मुख्यतः मनुष्य की हैसियत और उसके अन्तिम लक्ष्य पर होता है। प्रकृति और ईश्वर को जीवन की सुरक्षा एवम् मन की शान्ति हासिल करने में सहायक माना जाता है। भारतीय चिन्तन की मुख्य दिलचस्पी व्यावहारिक है। दर्शन जीवन का मार्गदर्शक हुआ करता है।

भारतीय दार्शनिक हलकों में पश्चिमी चिन्तन के पारम्परिक सिद्धान्तों पर उत्पन्न प्रभाव से हलचल होती है। सामान्य रूप से कहा जाए तो इससे नजरिए में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि नजरिए के तरीकों पर असर पड़ा है। कुछ लोगों ने भारतीय परम्परा का त्याग कर पश्चिमी विचारकों की अवधारणाओं को अपना लिया है। दुर्भाग्य की बात है कि वे भारतीय चिन्तन या पश्चिमी दर्शन पर कोई गहरी छाप बनाने में असमर्थ रहे हैं। सर्वाधिक असरदार नतीजा है भारतीय चिन्तन के मौलिक स्वररूप का तथा इसके नई-नई दिशाओं में विकास का, आज के काल-खण्ड के मुहावरों में पेश किया जाना। ब्रह्मसूत्र की प्रथम दो कहावतों के सन्दर्भ से धर्म की समस्याओं के प्रति भारतीय दृष्टिकोण का संकेत दिया जा सकता है। यह उपनिषदों, जो वेद के भाग हैं, का प्रधान उद्देश्य माना जाता है। ये दो सूत्र अन्तिम सत्य के ज्ञान की आवश्यकता तथा इसके प्रति एक युक्तिपूर्ण दृष्टिकोण से सम्बन्धित हैं।

ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया के पीछे एक रहस्य के होने की बात मानने के बावजूद हम मानसिक आँकड़ों के प्रवाह में रहस्य स्वीकार करते हैं। आध्यात्मिक चिन्तन, जिसका आधार अनुभव है, मानता है कि प्रकृति आवश्यकता की अवधारणा से बँधा हुआ होता है तथा स्व की प्रकृति स्वतन्त्रता के साथ बँधी होती है। ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया का सत्य, ब्रहमण एवम् व्यक्ति के अहम् का सत्य– एक ही होते हैं।

मनुष्य का शरीर भौतिक ब्रह्माण्ड में नाशवान चिनगारी भर है। उसका मन खुद एक औजार मात्र है। शरीर प्रकृति की उर्ध्वगामी आवेश का अन्तिम परिणाम नहीं हो सकता। इसके परे कुछ है, कुछ ऐसा जैसा मानवजाति होगी। उसमें शाश्वत है, लेकिन वह उसके सँकरे व्यक्तित्व में ढंका हुआ होता है। मनुष्य की महानता, इस बात में नहीं है कि वह क्या है, बल्कि इस बात में हैं कि वह क्या हो सकता है। उसे चेतन रूप में इसमें विकसित होना होता है। ईश्वरीय सृष्टि प्रक्रिया में भागीदारी करने की उसकी आकांक्षा, ऐसा करने की उसकी पवित्र इच्छा क्रमविकासीय आकांक्षा का औजार होता है। हम इसे ईश्वरीय करुणा कह सकते हैं या मनुष्य की शक्ति, देवो-प्रसाद अथवा तपोःप्रभा। हर व्यक्ति की सृजनात्मक प्रक्रिया में एक विशिष्ट भूमिका होती है।

धर्म तथा विज्ञान के बीच कोई द्वन्द्व नहीं है। विज्ञान जो कुछ कह सकता है वह मानव व्यक्तित्व के महत्व के सम्बन्ध में धार्मिक महत्व को प्रभावित नहीं करता। हो सकता है ब्रह्माण्ड में ऐसे दूसरे ग्रह हों, जिनमें विवेकशील जीव रहते हों।

धर्म में ऐसी बातें नहीं होनी चाहिए जो जाहिरा तौर पर जाने जा सकने वाले वैज्ञानिक तथ्यों के विरुद्ध हों। विज्ञान प्राकृतिक घटनाओं के अपने अवलोकन से कोई नैतिक संहिता नहीं बनाता।

महत्वपूर्ण सवाल है कि मनुष्य को प्राकृतिक विकास की प्रक्रिया, जो उद्देश्य से निर्देशित नहीं है के शीर्ष पर का समझा जाए या ईश्वर के स्वरूप में बनाया गया, ईश्वर की सन्तान माना जाए। वैज्ञानिक मानवतावादी चैतन्य, यद्यपि संयोग से बने जीव जो उस प्रक्रिया पर हावी हैं और जिसके वे अब तक के अन्तिम उत्पाद हैं, की शक्ति में विश्वास करते हैं। पर वे उस सीमा का अतिक्रमण करते हैं जहाँ तक मनुष्य जान्तव इच्छाओं से मुक्त रहता है और उस सीमा का भी जिस तक वह अपने आचरण को विवेकपूर्ण एवम् सार्वभौमिक हित की योजना के अनुरूप कर सकें। धर्म का मानना है कि मनुष्य प्रकृति और पराप्राकृतिक दो स्तरों पर जीता है। इन्द्रिय ग्राही या भाव संसार का हिस्सा होते हुए, वह सीमित या निश्चित है और इन्द्रियातीत संसार का हिस्सा के तौर पर वह असीमित है। आपके अंतर का वह आपके सांसारिक वजूद की अपेक्षा वृहत्तर है। मनुष्य स्वधर्म के नियमों की अवहेलना करने के लिए स्वतंत्र है।■

> *धर्म तथा विज्ञान के बीच कोई द्वन्द्व नहीं है। विज्ञान जो कुछ कह सकता है वह मानव व्यक्तित्व के महत्व के सम्बन्ध में धार्मिक महत्व को प्रभावित नहीं करता। हो सकता है ब्रह्माण्ड में ऐसे दूसरे ग्रह हों, जिनमें विवेकशील जीव रहते हों।*

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति। गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार। कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है। अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है। प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'। 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित। 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर चौदह खण्ड प्रकाशित। दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित। सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी।

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु
पुर बहु बिधि बना।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर
रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल
सेन बरनत नहिं बनै।

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, उसके अन्दर बहुत से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियां हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है। अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती।

इस बिन्दु पर पहुंचकर कथा की रिद्म बदलती है। यहां तुलसी ने जैसे एक स्टेज की सेटिंग की है। कथा-लय में यह परिवर्तन साभिप्राय है। अब हनुमान जो वनचर थे, सहसा एक नगर बल्कि राजधानी से साक्षात्कृत होते हैं। सुन्दर सहज अगम अनुमानी/कीन्हि तहाँ रावन रजधानी। यह हनुमान की कर्त्तव्य भूमि है। अब हनुमान लंका में 'चेक इन' करने वाले हैं। कथा में यह एक बड़ा पट-परिवर्तन है। छन्द बदलकर तुलसी इस बदले हुए परिदृश्य की ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। यह काम वाल्मीकि ने सर्ग परिवर्तन के जरिए अपने सुन्दरकांड में किया था। तुलसी के प्रबंध की योजना वैसी नहीं है, इसलिए वे छंदान्तरण से काम चलाते हैं।

लेकिन 'काम चलाना' कहना इसलिए उचित नहीं है क्योंकि तुलसी का छंद-चयन इस तब्दीली के तर्क को स्पष्ट करता है। नगरों में जीवन की 'पेस' बहुत ज्यादा है, अतः छंद भी स्वरोन्नति के जरिए तेज गति से इसका अनुवर्तन करता है। यह स्पीड की दुनिया है। 'सिविलाइजेशन इन अ हरी' की दुनिया। यहां जितनी हड़बड़ी है, उतनी गड़बड़ी है। जिसे देखो वो भागा जा रहा है। इस छंद में एक तरह की एक्सीलेरेटिंग है। एक शब्द दूसरे शब्द को एड़ लगता हुआ। बी.बी.सी. मुक्त विश्वविद्यालय ने कुआलालांपुर और सिंगापुर इन दो शहरों पर सिटीज़ इन अ हरी फिल्म बनाई थी। अब वनभूमि की मंथरता नहीं है। अब तो शहर का रश है, चूहा दौड़। रस उसी में ही है। जिस तरह से शहरी जीवन में अब एक मल्टी-टास्किंग, चैनल बदलने वाली, फास्ट-फारवर्डिंग प्रजाति पनपी है, उसी तरह से यह छंद मल्टी-टास्किंग का आभास "कहुं" शब्द से देता है। चैनल-फ्लिपिंग का भी इस छंद में लगातार आभास-सा होता चलता है। यह छंद शहरी जीवन का, २४X७ साइज की आशिमा का छंद है। उन लोगों की दुनिया के प्रकट होते वक्त एक दम उपयुक्त, निशाचर होने से जिनकी प्राकृतिक सर्केडियन (circadian) रिद्म पूरी तरह गड़बड़ा चुकी, जो कैफेन पर निर्भर रहकर अपने जीवन को विषाक्त कर चुके, जिनकी प्राकृतिक निद्रा का पैटर्न बिगड़ चुका होगा, जो सिर्फ तत्क्षण कॉफी, फॉस्ट फूड रेस्त्रां और स्पीड डेटिंग में ही भरोसा नहीं रख रहे बल्कि जो जेम्स ग्लीक द्वारा अपनी पुस्तक 'फास्टर : द एक्सीलरेशन ऑफ आलमोस्ट एवरीथिंग' में वर्णित "हड़बड़ी-रुग्णता" (Hurry sickness) के शिकार हो चुके, जिनके दिमाग इसलिए ही विकृत हो चुके क्योंकि उन्हें कभी "थीटा-स्टेज" नसीब ही नहीं हुई होगी कि जब ब्रेनवेव्स (मानस-तरंगें) शांत और रचनात्मक हालत में हो। जार्ज बीयर्ड की क्लासिक पुस्तक "अमेरिकन नर्वसनेस" इस तरह के जीवन के उस भय को अभिवेदित करती है जिसके

अनुसार "कुछ मिनटों का विलम्ब जीवन भर की आशाओं पर पानी फेर देगा"। वह जीवन जिसमें स्पीड का ही ईथोस पल रहा है। नगरीकरण के प्रसिद्ध लेखक ल्यूइस ममफोर्ड आधुनिक युग का मूल-यंत्र स्टीम इंजिन को नहीं, घड़ी को मानते हैं। वैज्ञानिक स्टीफन जै गूल्ड व्यंग्य के साथ लिखते है : If we continue to follow the acceleration of human technological time so that we end in the black hole of oblivion, the earth and its bacteria will only smile at us as a passing evolutionary folly. "यदि हम मानवीय प्राविधिकीगत समय का गत्वरण करते रहना जारी रखते हैं ताकि हमारा अंत विस्मृति के कृष्ण-विवर में हो तो पृथ्वी और इसके जीवाणु एक दिन में हमें एक 'क्षणिक विकासमूलक मूर्खता' के रूप में याद कर मुस्कराएंगे।"

वन के बहुत सेंसुअस और काव्यात्मक समय में रहे हनुमान अब निशाचरों के नगर में आ पहुंचे हैं, यह लयोत्क्रम से घोषित हो जाता है। यह छन्द परिस्थितिवश स्वयं हनुमान पर आ पड़ी सेंस आफ अर्जेंसी को भी संज्ञापित कर रहा है। जब भी सघन कार्यव्यापार दिखाना हो या परिदृश्य में हुए किसी बड़े परिवर्तन को प्रकाशन करना हो, तुलसी छंद-परिवर्तन की इस युक्ति को अपनाते हैं।

कनककोट की व्याख्या हम पूर्व में दो बार कर चुके हैं। अब यहां तुलसी यह भी सूचित करते हैं कि यह "विचित्र मणिकृत" है। पहले बालकांड में इस 'विचित्र' शब्द का इस्तेमाल नहीं था। तब कहा गया था कि "खाई सिन्धु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव/कनककोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव" कि उसे चारों ओर से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता"। यह विश्वकर्मा के निर्माण के वक्त था। रावण के आक्युपेशन के बाद अब यह "विचित्र" हो गया है और वह "खचित" इस "कृत" में बदल गया है। पहले तो स्वाभाविक मणियां थीं। उन प्राकृतिक मणियों में रहीं होंगी :- इन्दु मणि, कामद मणि, पारस मणि, नागमणि, कुंजरमणि, विदुर मणि, आवर्त मणि, मुक्तामणि, विक्रांत मणि, नीलकांत मणि, मर्कत मणि, पीतमणि, वज्रमणि। लेकिन अब "विचित्र मणि" है? क्या यह कोई आर्टिफिशियल मनी है? क्या अब यह कूटकृत हो गयी थीं? किस लिहाज से स्ट्रेंज थी वह? पीटर लेंग जिन्होंने एथिकल इन्वेस्टमेंट (नैतिक निवेश) नामक पुस्तक लिखी है, क्या कुछ संकेत देते हैं? वे कहते हैं Bank and governments create artificial currency which is ninety times more than the value of total goods and services the world has. This money only "exists" in the form of figures on computer records, but plays havoc with the global economy. Why there is apparently not enough money to put right many of the wrongs in the society, is because so much of the money is being used to make money out of money. It is being invested where it can make money out of trading in money as a commodity rather than being used to finance the provision of goods and services people need. ("बैंक और सरकारें कृत्रिम मुद्रा निर्मित करती हैं जो विश्व के पास मौजूद वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य की तुलना में ९० गुना ज्यादा है। यह राशि सिर्फ कम्प्यूटर अभिलेखों पर कुछ अंकों की शक्ल में ही "मौजूद" है किन्तु यह विश्व अर्थव्यवस्था का नाश किए दे रही हैं। आज समाज की बहुत सी गलतियों को दुरुस्त करने के लिए पैसा नहीं है क्योंकि इतना ज्यादा पैसा पैसे को पैदा करने में जा रहा है। यह वस्तु की तरह पैसे के ही व्यापारण में निवेशित किया जा रहा है, लोगों के लिए जरूरी चीजों और सेवाओं के वित्तयन के लिए नहीं"।)

क्या यह वैचित्र्य नहीं है? यह विचित्र मणियां एक ऐसी दुनिया की दीवाल (वाल स्ट्रीट) पर लगी हैं जहां पैसा न होने पर भी पैसा है। क्या इस विचित्र मनी से हमें अपने समय की वर्चुअल वेल्थ याद आती है? क्या आज दुनिया में ऐसे अमीर बहुसंख्या में नहीं हैं कि जो कोई उत्पादक काम नहीं करते, कोई उद्योग धंधा नहीं चलाते, सिर्फ दफ्तर में बैठ कम्प्यूटर और फोन पर सट्टा और सौदा करते हैं? खेतों, खदानों, कारखानों, चारागाहों, दुकानों, घरों में दुनिया का स्वाभाविक उत्पादन और मूल्यसृजन होता है किन्तु डिराइवेटिव, वायदा कारोबार और सट्टेबाजी का वैचित्र्य उन्हें अमीर बनाए है जिन्होंने उत्पादन और मूल्य सृजन की स्वाभाविकता को ताक पर रख दिया है। ध्यान दें कि तुलसी ने इन १२ पंक्तियों में

> *क्या आज दुनिया में ऐसे अमीर बहुसंख्या में नहीं हैं कि जो कोई उत्पादक काम नहीं करते, कोई उद्योग धंधा नहीं चलाते, सिर्फ दफ्तर में बैठ कम्प्यूटर और फोन पर सट्टा और सौदा करते हैं?*

> पैसा एक आवरण की तरह काम करता है- निगाहों से किसी अर्थव्यवस्था की हकीक़तों को छुपाते हुए, किसी अर्थव्यवस्था के बुनियादी पहलुओं और व्यवस्थाओं को विकृत करते हुए या उन पर पर्दा डालते हुए।

सजावट (शोभा) और शक्ति के दो आयामों को तो वर्णित किया है, लेकिन लंका में आर्थिक गतिविधियों के नाम पर सिर्फ 'बाजार' का उल्लेख किया है। उत्पादन की इकाइयों का उल्लेख नहीं है, लंका में न खेत खलिहान हैं न कारखाने, सिर्फ बाजार है जो वही प्रदान करता है जिन्हें आजकल की भाषा में फायनेन्शियल सर्विसेज (वित्तीय सेवाएं) कहा जाता है। लंका में आर्थिक गतिविधियों की दृष्टि से बाजार की ही एकमात्र उल्लेखनीय उपस्थिति है। बाजार के इस तरफ सजावट है, बाजार के उस तरफ ताकत है।

क्या यह मनी का वही वैचित्र्य है जिसे नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक अर्थशास्त्री फ्रेडरिक सोडी ने "आर्थिक विरोधाभास" (Economic paradox) कहा था? आर्थिक प्रक्रियाओं का Pons asinorum? द रिडल आफ द स्फिंक्स? लंका में बस सोना सोना सोना है। वाल्मीकि के वर्णन में तो लंका सुनहले रंग के खंभे, सोने की जालियों से विभूषित नगरी है "सोने के विचित्र फाटक सब ओर से सजी हुई राक्षसों की उस लंका को और भी उद्दीप्त कर रहे थे।" सोने के प्रासाद तो हैं ही। लेकिन वही स्वर्ण आब्सेसन विकृति है। सोडी का कहना है :- The value of money should not depend as the quantity of a single commodity such as gold. The index number of the general price level, or its reciprocal, the purchasing power of money, should be maintained constant by regulating the total quantity of money in circulation, volume being varied in order to maintain the price level costant. (पैसे का मूल्य स्वर्ण जैसी किसी एक ही वस्तु की मात्रा पर निर्भर नहीं होना चाहिए। सामान्य कीमत स्तर का सूचकांक या इसकी समकक्ष जनता की क्रय शक्ति को भी सुस्थिर बनाया जाना चाहिए, प्रचलन में मौजूद पैसे की कुल मात्रा को नियमित कर।)

आज तक दुनिया में जितना भी स्वर्ण खनित किया गया है, उसकी मात्रा १,४२,००० टन प्राक्कलित की गई है। यदि एक औंस सोने की कीमत एक हजार अमेरिकी डालर है या ३२,५०० डॉलर प्रति किलोग्राम है तो आज तक खोदे गए सोने का सकल मूल्य ४.५ ट्रिलियन डॉलर होगा। यह राशि अकेले अमेरिका में संचरणशील मुद्रा से भी कम है। अतः स्वर्ण को मुद्रा का आधार बनाना अवास्तविक होता है। स्वर्ण को मानक बनाने का अर्थ है कि मुद्रा की मात्रा स्वर्ण की आपूर्ति से तय की जाएगी। ऐसी मौद्रिक नीति आर्थिक मंदी के वक्त अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में मददगार नहीं होगी। लंका में सोने की फसीलें और फाटक, स्वर्ण-प्रासाद और स्वर्ण-स्तंभ बताते हैं कि यहां स्वर्ण अपने आप में मिशन है- कनक को आवरण बनाने में जो असामान्यता है उसे तुलसी ने 'विचित्र' शब्द से इंगित किया है। २०वीं शती के सबसे बड़े अर्थशास्त्री कीन्स ने veil of money (धन के आवरण) की चर्चा की है। लीफमैन (१९१७), शबर्टसन (१९२२), क्लासिंजर (१९९०) और लैडलर (१९९०) ने जर्मनी में की थी। अर्विंग फिशर ने १९वीं शती के आखिरी चरण में इस शब्द का प्रयोग किया था। शूम्पीटर (१९०८, १९१२) ने भी इस शब्द का प्रयोग किया था। यदि मुद्रा एक वस्तु, एक कमोडिटी है -स्वर्ण की तरह और यदि मुद्रा व वस्तुओं (goods) के बीच एक चिपचिपापन (stickiness) नहीं है बल्कि एक आवरण है तो ऊपर वर्णित वैचित्र्य होते ही रहेंगे। ए.सी. पिगोउ (A.C. Pigou) ने अपनी पुस्तक The veil of money में लिखा है:- money functions as a veil, hiding from the view the true conditions of an economy, distorting and obscuring even the basic features and characteristics of an economic system. ("पैसा एक आवरण की तरह काम करता है- निगाहों से किसी अर्थव्यवस्था की हकीक़तों को छुपाते हुए, किसी अर्थव्यवस्था के बुनियादी पहलुओं और व्यवस्थाओं को विकृत करते हुए या उन पर पर्दा डालते हुए"।) अतः हनुमान कनककोट को जब लंका की सबसे पहली विशेषता के रूप में जब नोट करते हैं तो हो सकता है कि वह सिर्फ एक चहारदीवारी की बात नहीं हो।

लंका में घरों का, यानी जनसंख्या का घनत्व ज्यादा था जिसे तुलसी ने "सुन्दरायतना घना" शब्द से प्रकट किया है। यह कृषि का घनत्व नहीं है, यह भौतिक विज्ञानी (physiological) घनत्व नहीं है। इन दो शब्दों में तुलसी आवासीय घनत्व की बात कर रहे हैं। यानी लंका अभी शहरी विस्तार (Urban sprawl) का शिकार नहीं हुई है। वह घनी बसी हैं। शहर भीतर ही भीतर संघनन कर रहा है किन्तु समीपवर्ती अंचलों और क्षेत्रों का अपने में अंतर्नियोग नहीं कर

रहा है। लगता है विश्वकर्मा जितना कर गए कर गए। उससे आगे रावण ने क्षेत्रवृद्धि नहीं की। तो लंका की एक विशेषता यह है कि उसका आवासीय घनत्व इतना ज्यादा है कि शुरु में ही हनुमान को ध्यान आ जाता है। हनुमान वन में रहे हैं। वहां 'स्पेस' की-स्थान/देश की अवधारणा कुछ दूसरी है। वहां एक घर इस पहाड़ी पर होता है, दूसरा उस पहाड़ी पर, लेकिन लंका में संभवतः कालोनी-कल्चर है। यह एक तरह की काम्पेक्ट सिटी है। ऐसा लगता है कि लंका के नगर-नियोजकों को जनसंख्या के घनत्व को लेकर बहुत माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं महसूस होती थी और उनका ज्यादातर ध्यान सेटलमैंट्स की ईस्थेटिक्स पर रहता था। क्या ऐसी नीति दीर्घकालिक (सस्टेनेबल) हो सकती थी? लंका के लोगों की जीवन दृष्टि 'सुन्दरायतन' और 'कनककोट' से प्रतिध्वनित होती है। पहले में सुन्दर आयतन-साइज के ब्यूटीफिकेशन की बात है। इसलिए 'सुंदरायतना' के पहले कृत जोड़ा गया है। यह स्वाभाविक सौन्दर्य नहीं है, मेक-अप है। यह 'Done up' है। इसलिए कृत है। यह सत्यं को सुंदरं से समीकृत करने वाली जीवन शैली नहीं है। वहां ब्यूटी की इंजीनियरिंग है। उसमें संगीत नहीं है, गणित है। आयतन और घनत्व वगैरा। यह प्रश्न रह ही जाता है कि क्या शहरी जीवन का सौंदर्य कास्मेटिक बेहतरी से वाकई सुनिश्चित किया जा सकता है।

ऊपर हमने जिस कनककोट की बात की है क्या उसका एक आधुनिक अनुवाद न्यूयार्क टाइम्स के स्तंभ लेखक थामस फ्रीडमैन के 'गोल्डन स्ट्रेट जैकेट' में है? फ्रीडमैन ने यह बात बाजार के सर्वतोभावी होने के संदर्भ में कही थी। क्या चारों राहों का उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम का मिलन बाजार के मुकाम पर ही होना है? तुलसी 'चौहट्ट हट्ट' कहकर मार्केट का डंका क्यों बजा रहे हैं। क्यों बता रहे हैं कि बाजार का लंका में यह घोष न केवल एकमात्र है बल्कि चतुर्दिक है। फ्रीडमैन ने बाजार को एकमात्र विचारधारा अगस्त १९९८ में कहा : I don't think there will be an alternative ideology this time around. There are none. (मैं नहीं समझता कि इस बार कोई वैकल्पिक विचारधारा है। कोई भी नहीं है।) १९९२ में फ्रांसिस फुकुयामा की प्रभावशाली कृति 'इतिहास का अंत' (द एंड ऑफ हिस्ट्री) आई जिसने कहा कि बाजार की विचारधारा ने अंततः किसी भी संभव विकल्प (viable alternative) का अंत कर दिया है और यह मनुष्य के विचारधारात्मक विकास का अंतिम बिंदु (एंड प्वाइंट) है। १९९८ में ब्लैयर हॉक्सबी ने घोषणा की कि 'बाजार वह साधन है जिसके जरिए अपूर्ण मनुष्य, दीर्घावधि में, भगवान की प्रज्ञा के पास पहुंच सकता है।' सन २००० में थामस फ्रैंक अपनी पुस्तक 'वन मार्केट अंडर गॉड' -"भगवान के मातहत एक ही बाजार" के साथ आए और यह स्थापित करने लगे कि "बाजारों के खिलाफ प्रतिरोध करना अपनी व्यक्तिमत्ता (personhood) को समर्पित करना है और उसे मानवजाति के परिवार से बाहर ला खड़ा करना है।" इसे ही डेनियर येरगिन ने 'बाजार सर्वानुमति' (Market consensus) कहा है। लंका में आल रोड्स लीड टु द मार्केट। तुलसी चौहट्ट की बात हट्ट से पहले क्यों कहते हैं? फिर हट्ट के बाद सुबट्ट बीथीं पर क्यों आ जाते हैं? क्या इन शब्दों को किसी भी किस्म के साहचर्य में न देखा जाए? न किसी किस्म के अनुक्रम में? क्या करें शब्दों के अरेंजमेंट की गैरइरादतन परिणतियों का? कि नहीं, वे स्वतंत्र शब्द हैं और उनके बीच कोई निर्भरताएं नहीं हैं? यह तो तुलसी लंका शहर का एक पर्यटक को परिचय भर दे रहे हैं? कि इस परिचय की न कोई जड़ है न शाखा? कि इस परिचय की कोई सामाजिक या नैतिक मंजिल नहीं है? कि यह परिचय नगर की भौगोलिकी और बस्ती के लेआउट का है? कि जिस नगर में सोने का इतना ढेर सारा वैभव हो, वहां का चौक भी कोई छोटी-मोटी चीज थोड़े रहा होगा। वह दुनिया के सबसे बड़े चौक थियानमैन चौक से बड़ा ही रहा होगा। या मैक्सिको के मोन्टेरी शहर के मैक्रोप्लाजा से बड़ा होगा। या पौलैंड के वारसा शहर के परेड चौक से। ये तीनों दुनिया के तीन सबसे बड़े चौक हैं। चउहट्ट हट्ट का अत्यन्त साधारण अर्थ ही लेना है तो उसका अर्थ चौराहे की हाट होगा। वह कोई स्पेनिश प्लाजा या इटैलियन पिआजा जैसा कुछ होगा या आधुनिक सुपर प्लाजा जैसा? या कालगेरी के क्रासरोड्स मार्केट जैसा।

लेकिन हनुमान पर्यटक तो हैं नहीं, पर्यवेक्षक हैं। उनकी नजर से कुछ चीजें कैसे चूकेंगी? बाजार में चारों ओर से राहें मिलती हैं या बाजार से राहें निकलती हैं? कि बाजार पर्यवसान है या उद्गम? या इन दोनों में से कुछ नहीं, वह

> *लंका में संभवतः कालोनी-कल्चर है। यह एक तरह की काम्पेक्ट सिटी है। ऐसा लगता है कि लंका के नगर-नियोजकों को जनसंख्या के घनत्व को लेकर बहुत माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं महसूस होती थी और उनका ज्यादातर ध्यान सेटलमैंट्स की ईस्थेटिक्स पर रहता था।*

अपने आप में न्यूट्रल है। बाजार से निकलने वाली सबसे अच्छी राह या स्ट्रीट कौन सी है? वाल स्ट्रीट? दलाल स्ट्रीट? लंदन का स्टॉक एक्सचेंज पेटर्नोस्टर चौक पर है। फ्रांस का क्विनकैंपो स्ट्रीट में। यह ध्यान दें कि वाल्मीकि के वर्णन में - और यह वर्णन तुलसी की अपेक्षा अधिक विशद है- बाजार का कहीं उल्लेख नहीं है। तुलसी ने उसका उल्लेख जरूरी समझा तो वह अकारण तो नहीं रहा होगा। क्या मुगलों के समय तक बाज़ार हावी नहीं हो गया था। क्या बाज़ार के प्रति एलियनेशन नहीं फैलने लगा था जिसका एक संकेत "बाज़ार से गुजरा हूं खरीददार नहीं हूं" में मिलता है? तुलसी के बालकांड में रावण द्वारा आधिपत्य लिये जाने से पूर्व की लंका नगरी की विस्तृत चर्चा है, लेकिन बाजार का उल्लेख वहां नहीं है। तो यह मार्केट-इकॉनामी रावण ने स्थापित की होगी।

कृपया इस टेक्स्ट की पहली पंक्ति के 'कृत' और दूसरी पंक्ति के 'बना' शब्द पर ध्यान दें। यह ब्यूटीफुल और ब्यूटिफाइड के बीच का फर्क है। लंका एक सुंदर शहर नहीं है, सौन्दर्यीकृत शहर है। 'बहु विधि बना' के अनुसार तो इसे सुंदर बनाने में तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़े- से लगते हैं। विश्वकर्मा की विरासत सुंदर रही होगी, लेकिन राक्षसी शासन की छाया-माया ने उसे विद्रूप कर दिया होगा। अब रावण ने उसके सौंदर्यीकरण की कोशिशें की होंगी। सौंदर्य एक स्थिति है। सौंदर्यीकरण एक प्रक्रिया है। यहां शहर का अलंकरण (embellishment) हो रहा है। 'सिटी ब्यूटीफुल' आंदोलन से असहमति जताते हुये कास गिलबर्ट ने १९०९ में हुई अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ आर्किटेक्ट्स की वार्षिक बैठक में कहा था : Let us have the city useful, the city practical, the city liveable, the city sensible, the city anything but the city beautiful. रावण का ध्यान 'चारुपुर' बनाने पर है। शैली पर ज्यादा, सार पर नहीं। उसका शहर जीने योग्य (liveable) तो है नहीं- कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं- उसका यह शहर सेंसिबल भी नहीं है। पहलवानी ही ज्यादा है, ज्ञानाराधन का उल्लेख नहीं है।

शहर में बहुत तरीकों से चौराहों को सुंदर बनाया गया होगा। चौरस्तों की लैंडस्केपिंग पर काफी दिमाग खर्च किया गया होगा। बाजारों को भी इन चौपथों के अनुक्रम में अलंकृत करने के जतन किये गये होंगे। बाजार का अणुव्रत सौंदर्य था, ईक्विटी नहीं? सुपर मार्केट्स होंगे, मॉल जैसी कोई चीजें। सुंदरता पर ध्यान होगा ताकि ग्राहक आवेग-क्रय (impluse buying) कर सके। बहुत सुंदर डिजाइन किये गये मॉल जिन्हें देखकर ग्राहक कह सके यह माल नहीं, कमाल है। बाजार में सौंदर्यीकरण का ध्यान पैकेजिंग का ध्यान है। बाजार को तरह-तरह से सुंदर बनाना ताकि ग्राहक को चमत्कृत भी किया जा सके। फुसलाया भी जा सके। आधुनिक शॉपिंग का मंत्र-डैजल, डिलाइट एंड सेड्यूस।

इन १२ पंक्तियों की योजना पर ध्यान दीजिए। ४-४ पंक्तियों के तीन छंद। प्रथम दो की दो पंक्तियों में सजधज और नुमाइश है और बाद की दो पंक्तियों में शक्ति का वर्णन है। तीसरे छंद में सौंदर्यीकरण और शोभायन की बात पूरी तरह गायब हो गई है। पहली दो पंक्तियों में सौंदर्य को दी गई सतही श्रद्धांजलि भी तीसरे छंद में नहीं है। उसका स्थान प्रचंड पट्ठों और महाकाय मुस्टंडों की एक ऐसी फौज के वर्णन ने ले लिया है जो निहायत क्रूर है। प्रथम छन्द की अंतिम दो पंक्तियों से ही सैन्य शक्ति वर्णन का प्रारंभ हो जाता है। ध्यान दें कि अयोध्या और जनकपुरी के वर्णन में तुलसी ने उनकी सैन्य-शक्ति का उल्लेख नहीं किया। लेकिन रावण के राज्य का तो पारिभाषिक इंस्ट्रुमेंट ही सैन्य-शक्ति है। वहां सैन्य-शक्ति अन्य सभी अवगुणों की प्रॉक्सी है। हनुमान लंका की इस वरीयता को पहचान जाते हैं। डिजरायली ने 'लार्ड जार्ज बेंटिंक-अ पालिटिकल बायोग्राफी' में कहा कि जहां भी विशाल स्थायी सेना है, वहां की सरकार तलवार की सरकार है (Wherever there is a vast standing army, the government is the government of the sword) यहां तो लंका में "भट कोटिन्ह" है। रावण की सत्ता कब्जे और काबू में करने वाली मानसिकता की सत्ता है। वहां हाथ में बागडोर नहीं, चाबुक है। रावण की युद्धातुरता की संतृप्ति के लिए इतनी विशाल सेना रखी गई है। लंका सोने की जरूर है, लेकिन इस सोने का उपयोग सैन्य संधारण के लिये हो रहा है। रावण की मानसिकता एक द्वीपीय मानसिकता है। उसे नहीं लगता कि इस पृथ्वी के प्रति भी उसके कुछ उत्तरदायित्व हैं। मुझे १६ अप्रैल १९५३ में डी.डी. आइजन हॉवर द्वारा समाचार संपादकों की अमेरिकन सोसायटी के शब्द याद आते हैं : Every gun that is made, every warship launched, every rocket fired signifies in the final sense, a theft from those who hunger and are not fed, those who are cold and are not clothed. This world in arms is

"तुलसी के बालकांड में रावण द्वारा आधिपत्य लिये जाने से पूर्व की लंका नगरी की विस्तृत चर्चा है, लेकिन बाजार का उल्लेख वहां नहीं है। तो यह मार्केट-इकॉनामी रावण ने स्थापित की होगी।"

रावण की सेना, तुलसी के अनुसार, अगण्य है। उसमें हाथी भी हैं, घोड़े भी हैं, रथ भी हैं, खच्चर भी हैं, पदाति भी हैं। कई वैज्ञानिकों ने नोट किया है कि मनुष्य के अलावा हाथी ही एक ऐसा प्राणी है जिसके पास मौत की समझ या उसकी अवधारणा है।

not spending on money alone. It is spending the sweat of its laborers, the genius of its scientists, the hopes of its children. This is not a way of life at all in any true sense. Under the clouds of war, it is humanity hanging on a cross of iron. हर निर्मित बंदूक, हर प्रेषित युद्धकयान, हर प्रक्षेपित रॉकेट, अंतिमतः उन लोगों से की गई चोरी है. जो भूखे हैं और जिन्हें खिलाया नहीं गया, जो ठंड झेल रहे हैं और जिनके पास कपड़े नहीं हैं। यह शस्त्र-संसार सिर्फ पैसा ही खर्च नहीं कर रहा। यह अपने श्रमिकों का पसीना, अपने वैज्ञानिकों की प्रतिभा, अपने बच्चों की उम्मीदें भी खर्च कर रहा। यह किसी सही मायने में ज़िंदगी जीने की राह नहीं है। युद्ध के बादलों के तले, यहां मानवता लोहे के सलीब पर जूझ रही है।

रावण की सेना, तुलसी के अनुसार, अगण्य है। उसमें हाथी भी हैं, घोड़े भी हैं, रथ भी हैं, खच्चर भी हैं, पदाति भी हैं। कई वैज्ञानिकों ने नोट किया है कि मनुष्य के अलावा हाथी ही एक ऐसा प्राणी है जिसके पास मौत की समझ या उसकी अवधारणा है। हाथी जिस तरह से अपने साथी हाथियों की लाशों की कब्रों पर वार्षिक भ्रमण करते हैं और जिस तरह से मृत्यु के उनके कर्मकांड हैं, उन्हें मौत के वाहकों के रूप में प्रोग्राम किया जा सकता है। दूसरे, हाथियों के बारे में विरोधी पक्ष के सैनिकों को जानकारी भी कम रहती थी। आज तक भी हाथी के जीवन के बहुत से पहलुओं के बारे में वैज्ञानिक सुनिश्चयन नहीं हो सका है। अपने आकार के आतंक (awe) और अपने व्यवहार के मनोविज्ञानगत रहस्य के चलते हाथी एक प्रभावी किलिंग मशीन के रूप में युद्धों में इस्तेमाल होते रहे। हन्नीबाल की गजसेना ने जब द्वितीय प्यूनिक युद्ध के लिये आल्प्स पर्वत को पार किया था, तो रोमन लोग आतंक से थर्रा गये थे।

अनगिनत वैदिक लड़ाइयों में भी हाथी का उपयोग बताया गया है। भारत से ही हाथियों को युद्ध में इस्तेमाल करने की तकनीक ईरान पहुंची। अलक्षेंद्र महान को एक अक्टूबर ३३१ ई.पू. गौगामेला के युद्ध में ईरानी गज सेना का सामना करना पड़ा था। मैसीडोनिया की सेनाएं गज सेना से विस्मित रह गई थीं। अलक्षेंद्र उनसे इतना प्रभावित हुआ कि बाद में उसने अपनी विश्व-विजयिनी सेना में कई हाथियों को शामिल कर लिया। गौगामेला में उसे १५ हाथी झेलने पड़े थे, पोरस के साथ युद्ध में ८५ हाथी। उस समय मगध सेना में ६००० हाथी थे और चंद्रगुप्त मौर्य के शासन में ९,००० हाथियों की सेना थी। यह जानकर कि मगध की गज-सेना इतनी विशाल है, अलक्षेंद्र का भारत में आगे बढ़ने का उत्साह जाता रहा था। सैल्यूकस ने ५०० भारतीय सैन्य हाथियों के बदले भारत का जीता हुआ हिस्सा चंद्रगुप्त को वापस कर दिया था। कौटिल्य ने सैन्य हाथियों को युद्ध के लिये दिये जाने वाले ७ प्रशिक्षणों का उल्लेख किया है। ये थे : उपस्थान, संवर्तन, सम्यण, वधावध, हस्तियुद्ध, नागरायण और संग्रामिका। माघ ने शिशुपाल वध (१८/३२) में कहा है : दांतों की टकराहट की ध्वनियां करते हुए, सिर उठाए हुए और पूंछों को झुकाए हुये व उठाए हुए और अपनी सूंडों के सिरों को एक-दूसरे के कोमलस्थलों पर मारते हुये हाथी युद्ध कर रहे हैं : अन्योन्येषां पुष्करैरामुशन्तो/ दानोद्भेदानुच्चकै-र्भुग्नवालाः/उन्मूर्धानः संनिपत्यापरान्तैः/ प्रायुध्यन्त स्पष्ट-दन्तध्वनीभाः। सैल्युसिड साम्राज्य ने गज सेना के इस्तेमाल से ही अपने विरुद्ध हुये विद्रोहों को रोका था। रावण के सैन्य हाथियों की संख्या तो तुलसी के अनुसार गिनी ही नहीं जा सकती थी। यह ध्यान रखें कि प्लिनी द एल्डर (४५ई.) में अपने ३७ खंडों के इतिहास में ६वीं किताब में मेगस्थनीज के द्वारा किये गये उस उल्लेख को शामिल किया है कि श्रीलंका के हाथी ज्यादा बड़े, ज्यादा दुर्धर्ष और युद्ध के लिये ज्यादा उपयुक्त माने जाते थे और उनकी इसी श्रेष्ठता के कारण श्रीलंका के हाथियों का व्यापारण खूब जमकर होता था। लगता है, रावण की राजसेना के जीन्स बाद में भी लंकाई हाथियों में संक्रमित होते रहे होंगे। १५५८ में कोलंबो (श्रीलंका) में पुर्तगाली किले का घेरा डालते समय राजा राजसिंह प्रथम ने २२०० हाथियों का उपयोग किया था। उसकी गजसेना का अधिकारी गजनायक हुआ करता था।

तुलसी ने हनुमान को रावण की सैन्य क्षमताओं में जो दूसरी बात नोट करते हुए दिखाया है, वह है अश्व-शक्ति। हार्स-पावर। अरविंद घोष (सीक्रेट ऑफ द वेदा, पृ. ४४) के अनुसार अश्व का मतलब हमेशा घोड़ा ही नहीं होता। अश्व या अश्वपति ऊर्जा के प्रतीक हैं। शास्त्रों में प्रथम अश्व उच्चैः श्रवा सागर मंथन से प्रकट हुआ बताया है जो इन्द्र को प्राप्त होता है और जो उसे स्वर्ग ले जाते हैं। बाद में असुरों/दनुजों में उसे इन्द्र से छीनने का संघर्ष भी चलता है। दुर्गा सप्तशती में शुंभ और निशुंभ उसे इन्द्र से छीन लाए गए बताए हैं। आर्यों का अश्वमेध यज्ञ प्रसिद्ध रहा है। मरुत ऋग्वेद में अश्वों की सवारी करते बताए गये हैं। हयग्रीव विष्णु के अवतार हैं और उनका सिर अश्व का है। ऋग्वेद में अश्विनों का ३७६ बार उल्लेख है। उन पर ५७ ऋचाएं हैं। कुछ लोगों ने अश्व-शक्ति

के इस्तेमाल को घुमन्तू संस्कृतियों से जोड़ा, लेकिन, जैसा कि हम देख रहे हैं, रावण जैसी सैटल्ड रक्षसंस्कृति भी घोड़ों का उपयोग युद्ध कला में करती थी। अमेरिका में देशी आदिवासियों की कई जनजातियां घोड़ों का उपयोग युद्ध में करती थीं, लेकिन वे भी घुमन्तू नहीं, सेटल्ड थीं। आर्यों को इस आधार पर भारत से बाहर से आई हुई घुमन्तू जाति बताने का षड्यंत्र चलाया गया। यदि ऐसा ही था तो घुमंतू के सुस्थिर हो जाने पर उसका उपयोग खत्म हो जाना चाहिए था। अब तो दुनिया भर में युद्ध कला बहुत आधुनिक और यांत्रिक हो गई है, लेकिन अभी भी विश्व भर के देशों की सेनाओं में अश्व-प्रभाग हैं। बल्कि कई बार तो महत्वपूर्ण मोर्चों पर उनकी कमी खलती है। उत्तरी अफ्रीका के अभियानों में जार्ज पैटन जैसे जनरल ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान महसूस किया कि Had we possessed an American cavalry division with pack artillery in Tunisia and in Sicily, not a German would have escaped. यदि हमारे पास ट्यूनीशिया और सिसली में अमेरिकी अश्व सेना का डिवीजन होता, तो एक भी जर्मन बचकर नहीं जा पाता। अभी जंजावीड मिलिशिया ने दारफर के युद्ध में, इस २१वीं सदी में, उनका कुशलता के साथ इस्तेमाल किया है। द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मन सेना ने साढ़े सत्ताईस लाख घोड़ों का इस्तेमाल यातायात के लिये किया और सोवियतों ने ३५ लाख घोड़ों का। खच्चरों का उपयोग भी सेनाएं परिवहन-प्रयोजनों के लिए करती रही हैं और तुलसी ने लंका में उनकी भी अगणित संख्या बताई है। खच्चरों का साहित्य में सेना वर्णन में कम ही उल्लेख किया गया है। तुलसी द्वारा उन्हें गज-बाजि के साथ-साथ उल्लेख करना एक बड़ी बात है क्योंकि प्रायः खच्चर उपहास के ही पात्र रहे हैं जबकि वैज्ञानिकों का कहना है कि खच्चर में एक ओर तो गधे की गंभीरता, धैर्य, सहनशक्ति और गहरी पाद-पकड़ (sure-footedness) रहती है, दूसरी ओर घोड़े की शक्ति, ऊर्जा और साहस भी रहता है। वे घोड़े की तुलना में दबावपूर्ण स्थितियों में धीरज जल्दी नहीं खोते और बीमारियों तथा कीड़ों के प्रति उनकी प्रतिरोधक शक्ति भी ज्यादा है। घोड़े की तुलना में वे ज्यादा बुद्धिमान और जिज्ञासु भी होते हैं। गज-बाजि-पदचर-रथ तो चतुरंगिणी सेना के चार क्लासिक अंग रहे हैं, लेकिन तुलसी ने इनके साथ 'धैर्य-धन' खच्चर को भी उल्लेख्य माना, यह महत्वपूर्ण है। यह विशेष भी है।

गज-बाजि-खच्चर के बाद तुलसी पदातिका का उल्लेख करते हैं। रावण की इन्फेंट्री का। पदचर आज तक भी सेनाओं का प्रमुख अंग है। किसी का कहना है कि The infantry doesn't change. We're the only arm [of the military]

रावण का रथ और राम का रथ अलग-अलग है। तुलसी ने उसका बहुत सुंदर उल्लेख किया है। 'रावनु रथी बिरथ रघुवीरा' के कारण विभीषण अधीर हो जाते हैं। तब कृपानिधान राम कहते हैं कि जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है।

where the weapon is the man himself. चतुरंगिणी में चौथा पक्ष रथ का है। रथ ऋग्वैदिक देवताओं के समय से रहा। उषा रथ पर सवार बताई गई हैं और अग्नि। संभवतः ऋग्वैदिक रथ बहुत बड़े होते थे क्योंकि वहां सरस्वती नदी को रथ के समान बड़ी कहा गया। सुल्ब सूत्रों में रथ की ऊंचाई-लंबाई-चौड़ाई के वर्णन भी मिलते हैं। ऋग्वैदिक रथों में पहियों की संख्या भी भिन्न-भिन्न है। अश्व के अलावा, हमारे धर्मशास्त्रों में, हाथियों द्वारा भी खींचे जाने वाले रथ बताए गए हैं। भारत के कई हिस्सों में रथोत्सव भी मनाया जाता है। जब मंदिर के देवता नगर-भ्रमण करते हैं। ऐरावतेश्वर मंदिर के रथ अपनी भव्यता में अद्वितीय हैं। यह पुनः ध्यान देने की बात है कि रथ को भी इतिहासकारों के षड्यंत्र का शिकार होना पड़ा जब सिंधु घाटी सभ्यता को वैदिक सभ्यता से भिन्न बताने के लिये रथ भी एक आधार बताया गया। बाद में प्रो. बी.बी. लाल ने हड़प्पन सभ्यता में भी रथ का अस्तित्व और उपयोग सिद्ध कर दिखाया। भगवान सिंह और एस.आर. राव ने भी हड़प्पन सभ्यता में रथ के साक्ष्य जुटाए हैं। कुमारस्वामी ने अश्व और रथ को प्रतीक की तरह प्रयुक्त हुआ बताया है : Psycho-physical complex on which the atman stands or in which it is seated. (Horse Riding in Rigveda). रावण के यहां रथ सैन्य-शक्ति के ही अंग बताए गये हैं। रावण का रथ और राम का रथ अलग-अलग है। तुलसी ने उसका बहुत सुंदर उल्लेख किया है। 'रावनु रथी बिरथ रघुवीरा' के कारण विभीषण अधीर हो जाते हैं। तब कृपानिधान राम कहते हैं कि जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। 'जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना'। राम शौर्य और धैर्य को रथ के पहिए, सत्य और शील को ध्वजा व पताका, बल, विवेक, दम और परोपकार को चार घोड़े, क्षमा, दया, समता को डोरी, ईश भजन को सारथी, वैराग्य को ढाल, संतोष को तलवार, दान को फरसा, बुद्धि को प्रचंड शक्ति, विज्ञान को धनुष, निर्मल व अचल मन को तरकश, शम-यम-नियम को बाण, विप्र गुरु पूजा को कवच कहते हैं। हनुमान रावण की सेना-बरूथ- को देखते हैं। लेकिन

यह सेना सिर्फ एक संख्यात्मक बल है। राम का आयाम एकदम भिन्न है।

रामकथा में राम-रावण युद्ध के समय देवताओं द्वारा राम को रथ पहुंचाने की घटना को पढ़कर मुझे बरबस १९६८ में एरिक वॉन डानिकेन के द्वारा लिखित पुस्तक Chariots of the Gods? : Unsolved Mysteries of the Post (देवताओं के रथ? : अतीत के अनसुलझे रहस्य) की याद आती है। उसके अनुसार प्राचीन सभ्यताओं को प्राविधिकी और धर्म उन आकाशी यात्रियों द्वारा सौंपे गए जिन्हें स्वागतस्वरूप देवता कहा गया। उसके अनुसार जिस तरह से दक्षिणी प्रशांत महासागर की कई जनजातियों ने अधिक विकसित अमेरिकी और जापानी सैनिकों को देवता समझ लिया था, आश्चर्य नहीं कि पृथ्वी के बाहर के अंतरिक्ष यात्रियों को, जो दूसरे ग्रहों से आए, मनुष्यों ने देवता समझ लिया हो। इन्हीं यात्रियों से प्राविधिकियां प्राप्त कर मिस्र के पिरैमिड, विलृशायर के पत्थर और ईस्टर द्वीप के माओई प्रस्तराकृतियां बनाई गई होंगी। एक मध्यकालीन कार्टोग्राफर पीरी रीस का नक्शा पृथ्वी को ऐसे दिखाता है जैसे रिमोट सेंसिंग का लाभ मिला हो। पेरू की नाज्का रेखाएं ऐसे दिखती हैं मानो अंतरिक्ष से आने वाले यात्रियों की एयर-फील्ड हों। इसलिए हो सकता है कि 'प्राचीन एस्ट्रोनॉट्स' ने राम को भी रथ देकर उनकी मदद की हो।

लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि राम ईश्वर हैं और देवताओं से कहीं अधिक और वृहत्तर है। यहां देवता दानिकेन की तरह 'अधिक विकसित अंतरिक्षीय सभ्यता' का प्रतिनिधित्व नहीं करते। वे तो राम के कर्तृत्व की प्रतीक्षा में हैं। 'सभय देव करुनानिधि जान्यो', 'हाकाकार सुरन्ह जब कीन्हा' जैसी अभिव्यक्तियां यह स्पष्ट भी करती हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि हनुमान द्वारा इस अवसर पर नगर-निरीक्षण करते हुए चतुरंगिनी सेना को आब्जर्व करना वाल्मीकि ने नहीं दिखाया है। उन्होंने बस इतना कहा है कि 'हाथों में शूल और पट्टिश लिए बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाले बहुत-से शूरवीर घोर राक्षस लंकापुरी की उसी प्रकार रक्षा करते थे, जैसे विषधर सर्प अपनी पुरी की करते हैं।' आगे हनुमान की सोच के रूप में भी उन्होंने यह कहलाया है : 'रावण के सैनिक हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए इस पुरी की रक्षा करते हैं।' इस चीज को तो तुलसी ने 'करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं' के रूप में नवीं पंक्ति में दिखाया है। लेकिन उनके इस वर्णन की तीसरी और चौथी पंक्ति स्पष्टतः 'बरूथ' और 'जूथ' यानी सेना की पंक्ति हैं। तुलसी एक ऐसे समय में रह रहे थे जब सत्ताएं मूलतः सैनिक ताकत के बूते पर बनती और जारी रहती थीं। सत्ताएं सुलहकुल भी करती थीं और चित्तौड़ के किले में ३०,००० नागरिकों की हत्याएं भी करती थीं।

> निशिचर बहुरूप हैं। पारंपरिक व्याख्याकारों ने इसका अर्थ यह कहकर किया है बहुरूप से काम रूप एवं श्वान, शूकर, श्रृंगाल, गर्दभ, अश्व, व्याघ्र, अज आदि के समान मुख वाले अनेक रूप रंग और आकार के निशाचर समझना चाहिए।

ये निशिचर बहुरूप हैं। पारंपरिक व्याख्याकारों ने इसका अर्थ यह कहकर किया है बहुरूप से काम रूप एवं श्वान, शूकर, श्रृंगाल, गर्दभ, अश्व, व्याघ्र, अज आदि के समान मुख वाले अनेक रूप रंग और आकार के निशाचर समझना चाहिए। लेकिन बहुरूप का एक अर्थ आइडेंटिटी फ्रॉड करने वाले विविध प्रकार के लोगों से है। आज हम व्यापार/वाणिज्यिक पहचान बदलने वाले बंदों को देखते हैं जो ऋण पाने के लिये बैंकों में दूसरे के नाम और पहचान का इस्तेमाल करते हैं, जो अपराध करने के लिए दूसरा भेष धारण कर लेते हैं, जो आईडेंटिटी क्लोनिंग करते हैं, जो दूसरे की पहचान से माल और सेवाएं पाते रहते हैं, जो इंपर्सोनेशन करते हैं, जो 'अकाउंट टेक ओवर' करते हैं, जो नकली पहचान पत्र बना लेते हैं, जो 'हैकिंग' करते हैं। विकसित सभ्यताओं में अक्सर ऐसा होने लगता है। इसीलिए सं.रा. अमेरिका में, Identity theft and Assumption Deterrence Act का प्रारूप सामने आया है। सन् २००३ में अमेरिकी जनसंख्या के ४.६ प्रतिशत लोग पहचान-चोरी ID Theft के शिकार हुए थे। एक अनुमान के अनुसार सन् २००२ में ५२.६ अरब डॉलर का नुकसान पहचान-चोरी से हुआ था। इससे लगभग ९१ लाख अमेरिकी प्रभावित हुए थे। केलीफोर्निया और विस्कोंसिन राज्यों ने तो रूप बदलने वाले इन तत्वों से नागरिकों को बचाने के लिये ऑफिस ऑफ प्राइव्हेसी प्रोटेक्शन बना दिया है। ऑस्ट्रेलिया में सन् २००१ में इससे ४ अरब ऑस्ट्रेलियन डॉलर की चोरी हुई। यूनाइटेड किंगडम के गृह विभाग का आकलन है कि वहां इससे प्रतिवर्ष १.२ अरब पौंड का नुकसान होता है। फ्रेडरिक फोरसिथ के उपन्यास द डे ऑफ द जैकाल में (जो आतंकवाद पर आधारित शुरूआती उपन्यासों में से एक है)। हत्यारा तीन व्यक्तियों के रूप चुराता है- एक मरे हुए बच्चे का जन्म प्रमाण-पत्र हासिल कर उसे पासपोर्ट के लिए इस्तेमाल करता

है, एक बार एक डेनिश पादरी का पासपोर्ट हासिल कर स्वयं को वैसा प्रदर्शित करता है और एक बार अमेरिकी टूरिस्ट बन जाता है। हैरी पॉटर एंड द गाब्लेट ऑफ फायर में बार्टी जूनियर नामक पात्र एक अन्य पात्र मैड-आई मूडी का रूप धारण कर लेता है। अमेरिका के २५ प्रतिशत आर्थिक अपराध आइडेन्टिटी फ्राड के अपराध हैं। इंपोस्टर्स तो इतिहास में हुए, कम्प्यूटर वाली समकालीन दुनिया में जिस पासवर्ड-प्रपंच को केविन मिट्निक ने 'सोशल इंजीनियरिंग' कहा, वह भी 'बहुरूप निशिचर' का ही एक रूप है। बादिर बंधुओं ने तो जन्मजात अंधे होते हुए भी ९० के दशक में रूप धारण की एक और बहुलता का प्रदर्शन किया जब इस्रायल में उन्होंने एक वृहद 'फोन और कम्प्यूटर फ्रॉड स्कीम' स्थापित की। यूजरनेम, क्रेडिट कार्ड आदि के मामलों में मछली फंसाने की संगणकयुगीन तकनीक को 'फिशिंग' (Phishing) कहा जाता है।

रामकथा यह कहती है कि सिर्फ आर्थिक अपराधों के नहीं, आतंक के फेसिलिटेटर के रूप में भी आइडेन्टिटी फ्राड काम आता है। राक्षस बहुरूप धारण करके ही आतंक फैलाने में सफल होते थे। स्वयं रावण भी विप्र साधु का भेष धरकर ही सीता का हरण कर पाता है। 'आइडेंटिटी फ्रॉड : अ क्रिटिकल नेशनल एंड ग्लोबल थ्रेट' नामक अध्ययन का प्रकाशन सन् २००३ में हुआ था। राक्षसों की छद्मवेशी विद्या उनके उद्देश्यों की सफलता के लिये अपरिहार्य है। वे उन्नत देशों की पहचान-प्रबंधन-प्रणालियों (आइडेन्टिटी मेनेजमेंट सिस्टम्स) को तरह-तरह के स्वांग रचकर भेद देते हैं। तुलसी इन्हें 'जूथ' कहते हैं, यानी किसी एक व्यक्ति की बात नहीं है, यह एक ग्रुप है जो इसे बहुत संगठित तरीके से कर रहा है। इसे तुलसी 'अतिबल' भी कहते हैं। लेकिन ये जूथ अतिबल एकवचन में नहीं हैं। ये बहुत है। ये लश्करे-तैयबा भी हैं, सिमी भी, इंडियन मुजाहिदीन भी, अबू निदाल आर्गेनाइजेशन, अल-बद्र, अल-कायदा, अंसार-अल-इस्लाम, दीनदार अंजुमन भी, फतह-अल-इस्लाम, हूजी, हरकत-उल-जिहाद-उल-इस्लामी, हमास, हरकत-उल-मुजाहिदीन, हेज़बोल्लाह, तालिबान, हिज़ुबल मुज़ाहिदीन, जैश-ए-मोहम्मद, सिपह-ए-सहबा आदि आदि भी। ये अतिबल जूथ नष्ट भी उसी राम के हाथों होंगे जिनके पास विश्वामित्र के द्वारा दी गई अतिबला विधा है। वाल्मीक बालकांड के बाईसवें सर्ग में इसके बारे में बताते हैं- 'बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध इस मंत्र-समुदाय को ग्रहण करो। इसके प्रभाव से तुम्हें कभी थकावट का अनुभव नहीं होगा, ज्वर नहीं होगा, तुम्हारे रूप में किसी प्रकार का विकार या उलटफेर नहीं हो पायेगा।' **बहुरूप** निशिचरी का यह ठीक विपक्ष है। विश्वामित्र इन्हें देते हुए कहते हैं- 'मेरी तपस्या से परिपूर्ण होकर ये तुम्हारे लिये

रामकथा यह कहती है कि सिर्फ आर्थिक अपराधों के नहीं, आतंक के फेसिलिटेटर के रूप में भी आइडेन्टिटी फ्राड काम आता है। राक्षस बहुरूप धारण करके ही आतंक फैलाने में सफल होते थे। स्वयं रावण भी विप्र साधु का भेष धरकर ही सीता का हरण कर पाता है।

बहुरूपिणी होंगी- अनेक प्रकार के फल प्रदान करेंगी।' इसलिए राम न बहुरूप से हताश होंगे, न अतिबल से, न जूथ से-समूह से। लंका के राक्षसी आतंकवाद की खासियत यह है कि वह जहां 'आर्गेनाइजेशन' पर आधारित है वहीं वह 'नॉन-स्टेट एक्टर्स' का खेल नहीं है। इसे नेटवर्किंग की जरूरत पड़ती है, इसलिए ग्रुप इसे एक स्वाभाविक इकाई लगता है। अकेले तो जिंदगी में बेरोजगारी है, भटकन है लेकिन 'जूथ' में 'यूथ' (युवा) को एक तरह की बांडिंग मिलती है, दिशा मिलती है, आदर्श मिलता है, मान्यता मिलती है, पूरकता मिलती है, 'बिलांग' करने का अहसास मिलता है। ये आतंकवादी नेटवर्क स्ट्रक्चर्स पर काम करते हैं। वे संगठित अपराध-तंत्रों के सहयोग पर भी काफी हद तक निर्भर रहते हैं। यह 'अकेले भेड़िए का आतंकवाद' नहीं है। यह डेविड कोपलैंड या बरूच गोल्डस्टीन का आतंकवाद नहीं है। यह 'लीडरलेस टेररिज़्म' भी नहीं है, बल्कि यहां तो लीडरों का लीडर रावण बैठा हुआ है। 'अतिबल सैन' का मतलब ही यही है कि इसे सेना का सपोर्ट है। भारत के सैन्य प्रमुख दीपक कपूर ने २५ मार्च २००९ को इस संभावना से इंकार नहीं किया कि पाकिस्तानी सेना आतंकियों की मदद करती है। इसका प्रमाण उन्होंने ४० से ५० आतंकवादी शिविरों का ठीक नियंत्रण-रेखा के पास होकर सक्रिय होने में देखा जो बिना पाकिस्तानी सेना की मिलीभगत के संभव ही नहीं है। बार-बार पाक सेना आतंकियों को भारतीय सेना में घुसपैठ करने में मदद देने के लिए रणनीतिक कवर-फायरिंग करती है। पाक सेना ने कश्मीर में सक्रिय आतंकियों को सहायता देने के लिये एकाग्र एक संचार-संजाल की स्थापना पाक-अधिकृत कश्मीर में कर रखी है। पाकिस्तानी आर्मी रेंजर्स आतंकियों को प्रशिक्षित करते हैं। २६/११ के आतंकियों को पाक सेना द्वारा प्रशिक्षित किया गया है, ऐसी रपटें भी सामने आई हैं। इसलिए 'जूथ अतिबल सैन' इन तीन अभिव्यक्तियों में साहचर्य, अनुक्रम और संगति बैठती है। वाकई इन दुष्ट तंत्रों का वर्णन पूरा-पूरा करना संभव नहीं है। इसलिए हमारी तरह तुलसी भी विस्तार भय से यह उल्लेख यहीं रोकते हैं। ■

नीलम दीक्षित

२९ सितम्बर १९६८ को गोरखपुर में जन्म। इलाहाबाद से बी.एस-सी.(जीव विज्ञान)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन एवं आकाशवाणी केन्द्रों द्वारा प्रसारण। दूरदर्शन में अनेक कार्यक्रमों का संचालन एवं वृत्तचित्र लेखन। कविता संकलन *पंखुरी-पंखुरी* प्रकाशित।

संपर्क- ५/१०७, विनय खंड, गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१० ईमेल- dhanyadxt@gmail.com

नदी-सी मैं

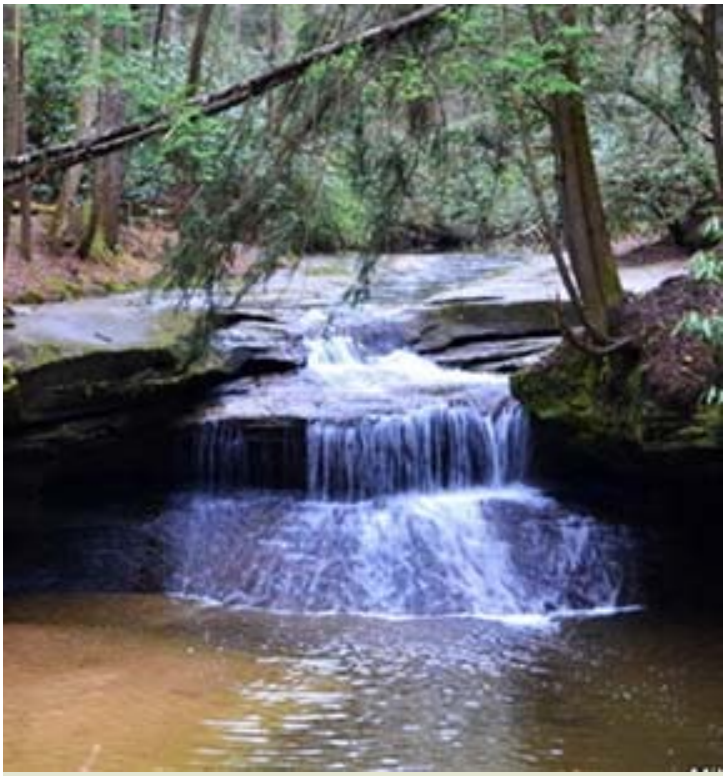

बाँहें फैलाए
स्वागत को आतुर
प्रतिक्षाकुल तुम
समो लेते हो मुझे...

बेकल मैं भी
समरस होने को
पनीली देह लिए
मीलों मील चली... अतृप्त

भेदकर चट्टानें
वज्र देह शिलाएं
यूँ लाँघती बेखौफ
गुजरती बीहड़ों से... तुम्हारी ओर

तपता मरुथल
शुष्क होने का भय
फिर भी बेसुध मैं
कभी मौन कभी चली... हरहराती

तेज हवाएँ
न मोड़ पाईं रुख़
उफनती कभी मैं
कभी मैं सोता बन बही... तुम तक

सींचती धरा
उगाती हरितवन
तिराती... तिरती
छलकाती अंचल से वात्सल्य... संजीवनी बनी

मधु मादक सी
लुटाती शीतलता
युगों से युगों-युगों
लिए खयाल एक ही मिलोगे तुम... बाँहें फैला

प्रेम में होना
यूँ बहा ले जाता मुझे,
मीलों मील नेह लुटाती
प्रेम, प्रीत गति देता... अनुरागी

ये कोलाहल कैसा!
तुम से अलग कैसे!
तुम से पृथक की चाह क्यों!
प्रेम में होना बना देता तुम्हें भी... विशाल वक्षा

तुम तक न जाना
गति का रुक जाना
तुम्हारा अन्तर तल
जहाँ बसती हूँ मैं
उथला ही रह जाता... किनारों सा,
फिर कैसे थिरते तुम... रहते स्थिर!
■

डॉ. एल.के. वर्मा
सेवानिवृत्त एयर मार्शल
सम्पर्क : २५३, ए.एफ.एन.ओ., इन्कलेव, प्लाट नं.-११, सेक्टर-७, द्वारिका, नयी दिल्ली-११००७५
ईमेल- lalji.lkv2007@gmail.com

कविता

तीर की छलांग

प्रिय भाई,
आज जा रहा हूँ, तुमसे दूर
तुम्हारी नसीहत से दूर
बहुत दूर, जहाँ नहीं पहुँचेंगी
तुम्हारी आकांक्षाओं की किरण।

स्वयं में बांध कर
बहुत जी चुका मैं,
आज के मूल्यों में बंध
बहुत ढोया संबंधों का बोझ!

प्रिय भाई
झुक गए हैं मेरे कंधे,
बाजुओं में हो रहा है कंपन,
उतारना चाहता हूँ अब यह बोझ
और देखना चाहता हूँ
टूटे पंख फिर जुड़ते हैं कि नहीं?
निकल जाऊँगा घाटियों के पार
एक ही क्षण में देखते रहना तुम।

पर यह नहीं समझना
परित्याग किया है तुम्हारा,
मैंने तो छोड़ा है वह सब
जो तुम्हें भी नहीं चाहिए था
रक्षा की है मैंने
तुम्हारी, और अपनी मंजूषा की!

प्रिय भाई,
रोकना नहीं मुझे
नहीं भूलना
प्रत्यंचा जितनी खिंचती है
तीर उतनी दूर जाता है,
प्रिय भाई,
और दब जाने दो मेरा मेरुदंड,
और प्रतीक्षा करो
तीर के छलांग लगाने की।

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म। अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित। पेशे से इंजीनियर। अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं। सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत।

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

अभी तो अपना मुझे घर तलाश करना है

शायर जनाब कुँवर 'कुसुमेश' की लाजवाब ग़ज़लों की किताब 'कुछ न हासिल हुआ' पढ़कर ऐसा महसूस होता है, जैसे कुछ नायाब हासिल हुआ है।

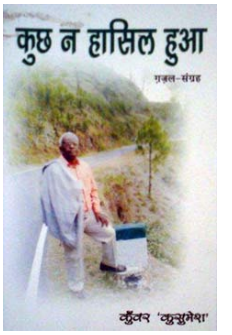

जो बड़े प्यार से मिलता है लपककर तुझसे
आदमी दिल का भी अच्छा हो वो ऐसा न समझ
आज के बच्चों पे है पश्चिमी जादू का असर
अब तो दस साल के बच्चे को भी बच्चा न समझ
ये कहावत है पुरानी सी मगर सच्ची है
तू चमकती हुई हर चीज़ को सोना न समझ

चमकती हुई हर चीज़ भले ही सोना न हो लेकिन चमकती हुई शायरी लिए हुए उनकी ये किताब किसी खजाने से कम नहीं। बेहतरीन कागज़ पर निहायत खूबसूरत ढंग से प्रकाशित ये किताब शायरी की अधिकांश किताबों से कुछ अलग ही है। भारतीय जीवन बीमा निगम से सेवानिवृत्त हुए कुँवर जी का जन्म तीन फरवरी सन उन्नीस सौ पचास में हुआ। गणित जैसे शुष्क विषय में पोस्ट ग्रेजुएशन करने में बाद उनका पिछले तीस वर्षों से शायरी जैसी सरस विधा से जुड़ना किसी चमत्कार से कम नहीं।

आज के अखबार की सुर्खी हमेशा की तरह
फिर वही दंगा, वही गोली हमेशा की तरह
धर्म के मसले पे संसद में छिड़ी लम्बी बहस
मज़हबों की आग फिर भड़की हमेशा की तरह
आप थाने में रपट किसकी करेंगे दोस्तों
चोर जब पहने मिले वर्दी हमेशा की तरह

कुँवर जी अपनी लेखनी सामाजिक मूल्यों के गिरते स्तर पर खूब चलाई है। दोहों और ग़ज़लों के माध्यम से उन्होंने समाज के अनेक अच्छे-बुरे पहलुओं को करीब से देख अपने पाठकों तक पहुँचाया है। पारंपरिक अंदाज़ से हटकर इनकी अधिकतर ग़ज़लें रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जुडी हैं।

सांप सड़कों पे नज़र आयेंगे
और बांबी में सपेरा होगा
वक्त दोहरा रहा है अपने को
फिर सलीबों पे मसीहा होगा
आदमियत से जिसको मतलब है
देख लेना वो अकेला होगा

कुँवर जी की शायरी की सबसे बड़ी खासियत है उसकी भाषा। हिंदी-उर्दू ज़बान का अद्भुत संगम उनकी शायरी में झलकता है। सरल शब्दों के प्रयोग से वो अपने अशआर में आम इंसान की परेशानियों और खुशियों को बहुत खूबी से दर्शाते हैं। उनकी शायरी आमजन की शायरी है। पढ़ते वक्त लगता है जैसे वो हमारी ही बात कर रहे हों, यही कारण है कि पढ़ते वक्त उनके अशआर अनायास ही ज़बान पर चढ़ जाते हैं और हम उन्हें गुनगुनाने लगते हैं। यही एक शायर की कामयाबी भी है।

> कुँवर जी की शायरी की सबसे बड़ी खासियत है उसकी भाषा। हिंदी-उर्दू ज़बान का अद्भुत संगम उनकी शायरी में झलकता है। सरल शब्दों के प्रयोग से वो अपने अशआर में आम इंसान की परेशानियों और खुशियों को बहुत खूबी से दर्शाते हैं। उनकी शायरी आमजन की शायरी है।

कुंवर जी की रचनाएँ आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित होती रहती हैं।

बुरा न देखते, सुनते, न बोलते जो कभी
कहाँ हैं तीन वो बन्दर तलाश करना है
कयाम दिल में किसी के करूँगा मैं लेकिन
अभी तो अपना मुझे घर तलाश करना है

शायरी की इस बेजोड़ किताब को उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ ने प्रकाशित किया है। किताब प्राप्ति के लिए आप प्रकाशक को उत्तरायण प्रकाशन, एम्-१६८, आशियाना, लखनऊ-२२६०२ पर लिख सकते हैं।■

आपकी बात

गर्भनाल का फरवरी का अंक मिला। बुद्धिजीवियों के विचार पढ़े, अच्छा लगा। मेक इन इंडिया अर्थात भारत में निर्मित, मुझे लगता है कि कम से कम हम लेखक लोग तो ऐसा बोल या लिख ही सकते हैं। क्या ऐसा नहीं लगता कि हिंदी को पूर्ण रूप से खिचड़ी होने से बचाने का दायित्व हम लेखकों पर भी है। इस संदर्भ में देवशंकर नवीन विमर्श मुझे बहुत ही अच्छा लगा। हमारे भारतवर्ष में साहित्य या पुस्तकें पढ़ने का चलन नहीं के बराबर है पर यहाँ अमेरिका में सभी बच्चे पुस्तकें पढ़ते हैं। प्रायः सभी पुस्तकालय जाते हैं। वे वहां के सदस्य होते हैं और विद्यालय की कक्षाओं में तो बच्चों ने क्या पढ़ा इसके विषय में प्रश्नोत्तर भी होते हैं। बच्चों में उत्सुकता भी होती पढ़ने की। दुःख होता है यह देखकर कि हमारी इस पीढ़ी को अपनी राष्ट्रभाषा से इतनी अरुचि है। सिनेमा जगत को हिंदी के प्रचार-प्रसार का एक अच्छा माध्यम माना जाता है परन्तु अब तो उसमें भी खिचड़ी ही परोसी जा रही है।

ओमलता अखौरी, अमेरिका

गर्भनाल का जनवरी-२०१६ मुद्रित अंक जर्मनी में प्राप्त हुआ। इसमें दिए गए आलेख पढ़कर बहुत आनंद आया। आपका काम और आपकी लगन बहुत प्रशंसनीय है। इस उपलब्धि पर आपको मेरी ओर से सहस्त्र बधाईयाँ।

विपुल गोस्वामी, बॉन, जर्मनी

गर्भनाल का फरवरी अंक प्राप्त हुआ। उदयन वाजपेयी का 'पारम्परिक ज्ञान भी मेक इन इंडिया है' के महत्व को हमें अवश्य समझना होगा। इस मुद्दे को उठाने के लिए लेखक को बधाई। 'मन की बात' के अन्तर्गत सभी लेख प्रेरक हैं। मनोज श्रीवास्तव का लेख, हमेशा की तरह, बेहतरीन है। 'विचार' के अन्तर्गत प्रभु जोशी का लेख 'वचन बहुवचन के द्वन्द' उद्वेलित करता है। संस्कृति को धर्म से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। रमेश जोशी के लेख 'बन्दूक संस्कृति' में काफ़ी कुछ समेटा है, वह ठीक कहते हैं कि बन्दूक अब अमेरिका के डीएनए में शामिल हो गयी है।

डॉ. मरिया कुमार का 'जीवन शैली प्रबंधन' सभी को पढ़ना चाहिए। 'भष्टाचार से कमाया गया धन डर, निद्रा और बदनामी देता है और ईमानदारी से अर्जित धन संतोष, शान्ति और सम्मान देता है,' भारत की मुसीबतें आधी रह जाएं यदि भारत के सभी राजनीतिज्ञ यह वाक्य कंठस्थ कर लें और इसका अनुसरण करें। कविताएँ सभी अच्छी हैं और नीरजजी का निश्तर खानकाही की किताब की अच्छी समालोचना की है।

दिव्या माथुर, यूके

यह पत्रिका बेजोड़ है। इतनी अच्छी सामग्री तथा सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा के साथ पत्रिका का प्रकाशन कोई आसान काम नहीं है। सबसे अच्छी बात यह है कि पत्रिका एकदम ठीक समय पर माह के प्रथम दिवस वेबसाइट पर उपलब्ध हो जाती है। संपादक मंडल को हार्दिक साधुवाद।

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

गर्भनाल हमेशा पढ़ता हूँ और एक बात हमेशा दिमाग में आती है कि लेखक लोग हमेशा हिंदी का रोना रोते हैं लेकिन कोई भी हिंदी लिखने में आम बोलचाल की शैली का उपयोग नहीं करते। विशुद्ध हिंदी लिखने या बोलने से अधिकांश लोग हिंदी का उपयोग करने में कठिनाई महसूस करते हैं। अगर सभी लोग हिंदी को रोज की भाषा में लिखेंगे तो बहुतेरे इसे पढ़ने में आनंद लेंगे। लेखकों से आग्रह है कि कृपा करके लिखने में क्लिष्ट हिंदी का उपयोग न करके रोजमर्रा की भाषा का इस्तेमाल करें तो पाठक सहजता से और ज्यादा रुचि लेकर पढ़ेंगे। अगर ये बात किसी को पसंद न आये तो माफ करें।

विनय बर्मन

गर्भनाल का अंक प्राप्त हुआ। हर बार की तरह ज्ञानवर्धक। रोचक और उत्कृष्ट है। **- नदीम परमार, सुप्रभा गुप्ता, अमेरिका, सुमन वर्मा, ऑस्ट्रेलिया, अरविंद कुमार, सुशीला शिवराण, दिल्ली, सौरभ पाण्डेय, इलाहाबाद, सुरेश जैन, भोपाल, महावीर उत्तरांचली, भूपेंदर सिंह**

गर्भनाल पत्रिका के स्वामित्व एवं अन्य विवरण

घोषणा

1. प्रकाशन स्थान	:	DXE-23, मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	सुषमा शर्मा (बॉक्स कारोगेटर्स, भोपाल)
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	DXE-23, मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल
4. प्रकाशक का नाम	:	सुषमा शर्मा
पता	:	DXE-23, मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल
5. संपादक का नाम	:	सुषमा शर्मा
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	DXE-23, मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों, तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	सुषमा शर्मा भोपाल

मैं सुषमा शर्मा एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 1 मार्च 2016
भोपाल

हस्ताक्षर
सुषमा शर्मा
प्रकाशक एवं सम्पादक